गान्धी-सिद्धान्त

अर्थात्

महात्मा गांधीका ग्रंथ

"हिन्द स्वराज्य"

और कई महत्वपूर्ण लेखोंका भाषान्तर

सम्पादक

"सरलगीता"कार

लक्ष्मण नारायण गर्दे

भारतमित्र-सम्पादक

प्रथम संस्करण } संवत् १९७७ वि० { मूल्य १।) सजिल्द १॥)

प्रकाशक—
लक्ष्मण नारायण गर्दे
१, नरसिंग लेन,
कलकत्ता

प्राप्ति स्थान :—
ग्रन्थ प्रकाशक समिति
१, नरसिंग लेन कलकत्ता।

महावीर प्रसाद पोद्दार द्वारा
मुद्रित
वणिक् प्रेस
६० मिर्जापुर स्ट्रीट
कलकत्ता

विषय सूची

परिशिष्ट

सम्पादकीय

यह पुस्तक महात्मा गान्धीकी Home Rule for India नामकी अंगरेजी पुस्तकका अनुवाद है और यह अंगरेजी पुस्तक महात्माजीकी "हिन्द स्वराज्य" नामकी गुजराती पुस्तकका महात्माजी द्वारा ही किया हुआ अंगरेजी अनुवाद है। मूल पुस्तक १९०८ में पहले पहल ट्रान्सवालमें प्रकाशित हुई और इसका विषय इतने महत्वका है कि आज भी इसके प्रकाशनकी वैसी ही आवश्यकता है जैसी उस समय थी।

इस पुस्तकका नाम "महात्मा गान्धीका सिद्धान्त" इसलिये रखा गया है कि जिसमें पुस्तकका नाम पढ़ते ही यह मालूम हो जाय कि इस पुस्तकमें महात्मा गान्धीके जीवनसिद्धान्तोंका प्रतिपादन है; "स्वराज्य" शब्दसे साधारणतः जो अर्थबोध होता है उससे महात्मा गान्धीके "स्वराज्य"का अर्थ बिलकुल भिन्न है। *भारतमें फिर प्राचीन आर्यसभ्यताका स्थापित होना* ही महात्मा गान्धीका स्वराज्य है और इस पुस्तकमें आधुनिक सभ्यताके दोषोंका आविष्करण करके प्राचीन सभ्यताका महत्व बतलाया गया है। महात्मा गान्धी एक नेता हैं और भारतको जिस ओर वे ले जाना चाहते हैं उसका दिग्दर्शन इस पुस्तकके पाठसे हो जाता है।

मूल पुस्तकके अनुवादके अतिरिक्त इसमें एक परिशिष्ट प्रक-

गया है जिसमें "कुछ आधारभूत ग्रन्थ" और "विख्यात पुरुषोंके प्रमाणपत्र" महात्माजीकी अंगरेजी पुस्तकसे ही लिये गये हैं और शेष विषय सम्पादकने प्रासंगिक जानकर अपनी तरफसे जोड़े हैं और यह आशा की जाती है कि इस पुस्तकके साथ उन विषयोंका होना पाठकोंके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

हमने यह अनुवाद प्रकाशित करनेके पूर्व यह जान लेना अवश्यक समझा कि महात्माजी पुस्तकमें कोई परिवर्तन तो नहीं करना चाहते। इसके लिये हमने उनसे मिलकर प्रार्थना की। सिद्धान्त तो सिद्धान्त ही है पर वर्तमान परिस्थितिके अनुसार जो परिवर्तन उन्होंने आवश्यक समझा है उसे उन्होंने लिख दिया है जो महात्माजीकी प्रस्तावनाके बाद उन्हीं द्वारा लिखित "विशेष वक्तव्य"में प्रकाशित हुआ है।

इस पुस्तकमें महात्माजीने जो विचार प्रकट किये हैं वे यद्यपि नये नहीं हैं (यूरोपमें महात्मा टालस्टाय आदि तत्ववेत्ताओंने इन विचारोंको पहलेसे ही प्रकाशित कर रखा है) तथापि हिन्दी भाषाभाषियोंके सामने ये एक नयी सृष्टि खड़ी कर देंगे। महात्मा गान्धीने इस पुस्तकमें अपने सिद्धान्तके साथ भारतके स्वराज्यका अपना मार्ग स्पष्टतः अंकित कर दिया है। हमारा विश्वास है, "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्"।

कलकत्ता
आषाढ़ शु० ६, १९७७ } सम्पादक

प्रस्तावना

मैंने इस पुस्तकको एकसे अधिक बार पढ़ा है। इस समय इसे ज्योंकी त्यों प्रकाशित कर देना ही मैं आवश्यक समझता हूं। पर यदि मुझे इसमें कुछ संशोधन करना पड़े तो केवल एक ही शब्द है जिसे मैं एक अंगरेज मित्रसे किये हुए वादेके अनुसार बदल देना पसन्द करूंगा। मैंने पार्लमेंटको "वेश्या" कहा है इसीपर उस अंगरेज मेमका कटाक्ष है। उसका कोमल मन इस शब्दके ग्राम्य भावपर मचलने लगा था। पाठकोंको यह स्मरण दिलाना है कि यह पुस्तक मूल गुजराती पुस्तकका स्वतन्त्र अनुवाद है।

इस पुस्तकमें जो विचार प्रकट किये गये हैं उनके अनुसार आचरण करनेका प्रयत्न कई वर्ष बराबर करनेके पश्चात् आज भी मैं यही समझता हूं कि इसमें जो मार्ग दिखाया गया है वही स्वराज्यका एकमात्र सच्चा मार्ग है। सत्याग्रह-अर्थात् प्रेमका सिद्धान्त ही जीवनका सिद्धान्त है। उसके उल्लंघनसे राष्ट्र-विच्छेद होता है। उसके दृढ़ता-पूर्वक पालनसे राष्ट्रोद्धार होता है।

मोहनदास करमचन्द गान्धी

महात्मा गांधी

महात्मा गान्धीका सिद्धान्त

पहला परिच्छेद

कांग्रेस और उसके पदाधिकारी

पाठक—इस समय हिन्दुस्तानमें स्वराज्यकी हवा बह रही है। हमारे सब देशवासी देशकी स्वाधीनताके लिये तरसते हुए दिखायी देते हैं। दक्षिण अफ्रिकामें हमारे जो भाई हैं उनमें भी इसी भावका संचार हुआ है। क्या आप कृपा कर इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करेंगे ?

संपादक—प्रश्न तो आपने अच्छा किया पर उत्तर इतना सहज नहीं है। समाचारपत्रका एक उद्देश्य यह होता है कि जनताके भावोंको जानकर उनको प्रकट करे, दूसरा यह कि जनतामें कुछ इष्ट भावनाएं जागृत करे, और तीसरा यह कि निर्भयताके साथ जनताके दोष दिखला दे। आपके प्रश्नका उत्तर देनेमें इन तीनों बातोंका उपयोग करना पड़ेगा। कुछ तो जनताकी इच्छा प्रकट करनी होगी, कुछ भावनाओंका संचार करना होगा, और कुछ दोष भी दिखला देने होंगे। परंतु आपने प्रश्न किया है तो उत्तर देना मेरा कर्तव्य है।

पाठक—तो क्या आप समझते हैं कि स्वराज्यकी इच्छा हम लोगोंमें उत्पन्न हो चुकी है?

संपादक—इसी इच्छासे नैशनल कांग्रेस उत्पन्न हुई। 'नैशनल (राष्ट्रीय)" शब्दसे ही यह बात प्रकट होती है।

पाठक—वास्तविक बात यह नहीं है। तरुण भारत कांग्रेसको कुछ नहीं समझता। लोग यह सोचते हैं कि कांग्रेस ब्रिटिश राजको स्थायी करनेका एक साधन है।

संपादक—यह पक्की बात नहीं है। यदि भारतके वृद्ध तपस्वी (ग्राण्ड ओल्ड मैन) जमीन तैयार न किये होते तो हमारे नवयुवक स्वराज्यकी चर्चा भी आज न करते होते। मि० ह्यूमने जो कुछ लिखा है, उन्होंने जिस प्रकारसे हम लोगोंको कार्यमें प्रवृत्त किया, और कांग्रेसके उद्देश्य सिद्ध करानेके लिये कितना प्रयत्न करके हम लोगोंको जगाया है उसे हम कैसे भूल सकते हैं? सर विलियम वेडरवर्नने इसी काममें तन, मन, धन अर्पण कर दिया। उनके लेख आज भी पढ़ने योग्य हैं। अध्यापक गोखलेने राष्ट्रको तैयार करनेके लिये दरिद्रता स्वीकार की और अपने जीवनके २० वर्ष दे दिये। इस समय भी वे दरिद्रता स्वीकार किये हुए हैं। स्वर्गीय जस्टिस बद्रुद्दीन तैयवजी भी उन्हीं लोगोंमेंसे एक थे जिन्होंने कांग्रेसके द्वारा स्वराज्यका बीज बोया। उसी प्रकार बंगाल, मद्रास, पंजाब तथा अन्यान्य स्थानोंमें क्या हिन्दुस्थानी और क्या अंग्रेज, भारतके प्रेमी और कांग्रेसके मेम्बर अनेक हुए।

पाठक—ठहरिये, ठहरिये, आप बड़ी तेज़ीसे आगे बढ़े जा रहे हैं, मेरे प्रश्नको न जाने आपने कहां छोड़ दिया। मैंने आपसे स्वराज्यके सम्बन्धमें प्रश्न किया था और आप पर-राज्यकी चर्चा कर रहे हैं। मैं अंग्रेज़ोंके नाम नहीं सुनना चाहता और आप वही सुना रहे हैं। ऐसी अवस्थामें हमारी आपकी राय मिलना असंभव ही मालूम होता है। यदि आप बिना विषयान्तर किये केवल स्वराज्यके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करें तो मैं सुनूंगा। और इधर उधरकी बातोंसे मुझे संतोष न होगा।

संपादक—आप अधीर हो रहे हैं। मैं अधीर नहीं हो सकता। यदि आप थोड़ी देर सुन लें कि मैं क्या कहता हूं तो मैं समझता हूं कि आपको अपना विषय मिल जायगा। स्मरण रखिये, वृक्ष एक दिनमें ही तैयार नहीं हो जाता। आपने मेरी बात काट दी और कहा कि मैं हिन्दुस्थानकी भलाई चाहनेवालों-की बात सुनना नहीं चाहता इससे यह प्रकट होता है कि कमसे कम आपके लिये स्वराज्य अभी बहुत दूर है। आप जैसे लोग यदि बहुतसे हो जायं तो हम लोगोंकी कभी उन्नति न होगी यह बात अच्छी तरह समझ लीजिये।

पाठक—मुझे तो यह मालूम होता है कि आप इधर उधरकी बातें छेड़ कर असल बातको ही भुलाना चाहते हैं। जिन्हें आप देशकी भलाई चाहनेवाले समझते हैं उन्हें मैं वैसा नहीं समझता। तब आपकी ये बातें मैं क्यों सुनूं? जिन्हें आप राष्ट्रके जनक कहते हैं, भला बताइये तो, उन्होंने उसके लिये

पाठक—तो क्या आप समझते हैं कि स्वराज्यकी इच्छा हम लोगोंमें उत्पन्न हो चुकी है ?

संपादक—इसी इच्छासे नैशनल कांग्रेस उत्पन्न हुई। 'नैशनल (राष्ट्रीय)" शब्दसे ही यह बात प्रकट होती है।

पाठक—वास्तविक बात यह नहीं है। तरुण भारत कांग्रेसको कुछ नहीं समझता। लोग यह सोचते हैं कि कांग्रेस ब्रिटिश राजको स्थायी करनेका एक साधन है।

संपादक—यह पक्की बात नहीं है। यदि भारतके वृद्ध तपस्वी (ग्राएड ओल्ड मैन) जमीन तैयार न किये होते तो हमारे नवयुवक स्वराज्यकी चर्चा भी आज न करते होते। मि० ह्यूमने जो कुछ लिखा है, उन्होंने जिस प्रकारसे हम लोगोंको कार्यमें प्रवृत्त किया, और कांग्रेसके उद्देश्य सिद्ध करानेके लिये कितना प्रयत्न करके हम लोगोंको जगाया है उसे हम कैसे भूल सकते हैं? सर विलियम वेडरवर्नने इसी काममें तन, मन, धन अर्पण कर दिया। उनके लेख आज भी पढ़ने योग्य हैं। अध्यापक गोख-राष्ट्रको तैयार करनेके लिये दरिद्रता स्वीकार की और अपने २० वर्ष दे दिये। इस समय भी वे दरिद्रता स्वीकार हुए हैं। स्वर्गीय जस्टिस बद्रुद्दीन तैयवजी भी उन्हीं लोगों-एक थे जिन्होंने कांग्रेसके द्वारा स्वराज्यका बीज बोया। प्रकार बंगाल, मद्रास, पंजाब तथा अन्यान्य स्थानोंमें क्या हिन्दुस्थानी और क्या अंग्रेज, भारतके प्रेमी और कांग्रेसके मेम्बर अनेक हुए।

पाठक—ठहरिये, ठहरिये, आप बड़ी तेज़ीसे आगे बढ़े जा रहे हैं, मेरे प्रश्नको न जाने आपने कहां छोड़ दिया। मैंने आपसे स्वराज्यके सम्बन्धमें प्रश्न किया था और आप पर-राज्यकी चर्चा कर रहे हैं। मैं अंग्रेज़ोंके नाम नहीं सुनना चाहता और आप वही सुना रहे हैं। ऐसी अवस्थामें हमारी आपकी राय मिलना असंभव ही मालूम होता है। यदि आप विना विषयान्तर किये केवल स्वराज्यके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करें तो मैं सुनूंगा। और इधर उधरकी बातोंसे मुझे संतोष न होगा।

संपादक—आप अधीर हो रहे हैं। मैं अधीर नहीं हो सकता। यदि आप थोड़ी देर सुन लें कि मैं क्या कहता हूं तो मैं समझता हूं कि आपको अपना विषय मिल जायगा। स्मरण रखिये, वृक्ष एक दिनमें ही तैयार नहीं हो जाता। आपने मेरी बात काट दी और कहा कि मैं हिन्दुस्तानकी भलाई चाहनेवालोंकी बात सुनना नहीं चाहता इससे यह प्रकट होता है कि कमसे कम आपके लिये स्वराज्य अभी बहुत दूर है। आप जैसे लोग यदि बहुतसे हो जायं तो हम लोगोंकी कभी उन्नति न होगी यह बात अच्छी तरह समझ लीजिये।

पाठक—मुझे तो यह मालूम होता है कि आप इधर उधरकी बातें छेड़ कर असल बातको ही भुलाना चाहते हैं। जिन्हें आप देशकी भलाई चाहनेवाले समझते हैं उन्हें मैं वैसा नहीं समझता। तब आपकी ये बातें मैं क्यों सुनूं? जिन्हें आप राष्ट्रके जनक कहते हैं, भला बताइये तो, उन्होंने उसके लिये

क्या किया है? वे तो यह कहते हैं कि अंग्रेज सरकार न्याय करेगी और हम लोगोंको उनके साथ सहकारिता करनी चाहिये।

संपादक—मैं आपको बड़ी नम्रताके साथ यह बतलाये देता हूं कि हम लोगोंके लिये यह बड़ी लज्जाकी बात है कि आप उन वृद्ध तपस्वीके सम्बन्धमें ऐसे निरादरपूर्ण शब्द उच्चारण करें। पहले उनका काम तो देखिये। उन्होंने हिन्दुस्थानकी सेवामें अपना जीवन अर्पण कर दिया है। हम लोग जो कुछ जानते हैं, उन्हींका बताया हुआ है। पूज्य दादाभाईने ही हम लोगोंको यह बतलाया कि अङ्गरेजोंने हमारा जीवनरक्त चूस लिया है। यदि आज भी उन्हें ब्रिटिश जातिपर भरोसा है तो इससे किसीका क्या बिगड़ता है? यदि यौवनके पूर्ण उत्साहके कारण हम लोग एक कदम और आगे बढ़ रहे हैं तो क्या इससे दादाभाईकी पूज्यता कुछ कम हो जायगी? क्या इसी कारणसे हम लोग उनकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हो गये? जिस पैढ़ीपर पैर रख कर हम लोग ऊपर चढ़े उसी पैढ़ीको लात मारकर गिरा देना कोई बुद्धिमानीका लक्षण नहीं है। सीढ़ीकी एक पैढ़ी हटा देनेसे पूरी सीढ़ी ही नीचे आ गिरती है। बाल्यावस्था पार कर जब हम लोग बड़े होते हैं तो बाल्यावस्थाका तिरस्कार नहीं करते, बल्कि बड़े प्रेमसे बचपनकी बातोंका स्मरण करते हैं, यदि कई वर्ष अध्ययन करनेके पश्चात् कोई शिक्षक मुझे शिक्षा दे और उस शि[illegible] में एक छोटीसी इमारत उठाऊँ

तो उस शिक्षकसे मैं अधिक बुद्धिमान न कहलाऊंगा। वह सदा ही मेरे लिये पूज्य होंगे। भारतके वृद्ध तपस्वीकी भी यही बात है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि वह राष्ट्रीयताके जनक थे।

पाठक—आपने अच्छी बात कही। अब मैं समझा कि हम लोगोंको दादाभाईके प्रति पूज्य भाव रखना चाहिये। वह और उनके जैसे और लोग यदि न होते तो शायद हम लोगोंमें आज यह भाव न होता जो हमारे हृदयके अन्दर लहरें मार रहा है। पर अध्यापक गोखलेके बारेमें यह बात कैसे कही जा सकती है? वह तो अङ्गरेजोंके अटल मित्र हैं; वह कहते हैं कि अङ्गरेजोंसे हमें अभी बहुत कुछ सीखना है, उनका राजनीतिक चातुर्य लेना है, तब कहीं स्वराज्यकी बात कर सकते हैं। उनकी स्पीचें पढ़ते पढ़ते अब जी ऊब गया।

संपादक—यदि आपका जी ऊब गया तो यह आपका उतावलापन है। हमारा यह विश्वास है कि जो अपने मातापिताके धीमेपनसे असन्तुष्ट होते हैं और उनपर इसलिये नाराज़ होते हैं कि वे अपने लड़कोंके साथ नहीं दौड़ते, वे अपने मातापिताके अवज्ञाकारी समझे जाते हैं। अध्यापक गोखले मातापिताके स्थानपर हैं। वह यदि हम लोगोंके साथ नहीं दौड़ सकते तो इससे बिगड़ता ही क्या है? जो राष्ट्र स्वराज्य चाहता है वह यदि अपने पूर्व पुरुषोंसे घृणा करे तो इससे उसका काम न बनेगा। यदि वृद्ध-पूजाका भाव हम लोगोंमें न हो तो हमलोग

किसी काम लायक न होंगे। परिपक्व विचारके पुरुष ही अपना शासन आप कर कसते हैं, तेजमिजाज़ नहीं। अध्यापक गोखलेने जिस समय भारतीय शिक्षाकार्यके लिये अपना जीवन अर्पण किया उस समय उनके जैसे कितने लोग थे? मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अध्यापक गोखले जो कुछ करते हैं, सदुद्देश्यसे और भारतकी सेवाके विचारसे ही करते हैं। देशमाताके प्रति उनकी इतनी दृढ़ भक्ति है कि काम पड़नेपर वह उसके लिये अपना जीवन दे देंगे। जो कुछ वह कहते हैं, किसीकी खुशामद करनेके लिये नहीं बल्कि इसलिये कि वह उसीको सच मानते हैं। इसलिये हम लोगोंका यह कर्तव्य है कि उनके प्रति अत्यन्त पूज्य भाव रखें।

पाठक—तब क्या उनका वाक्य ब्रह्मवाक्य समझना होगा?

संपादक—मैंने यह तो नहीं कहा। यदि हम लोगोंके विचार वास्तवमें उनसे भिन्न हों तो वह विद्वान अध्यापक ही हम लोगोंको यह सलाह देंगे कि आप अपनी विवेकबुद्धिकी आज्ञाका ही पालन कीजिये। हमारा मुख्य काम इतना ही है कि उनके कामको बदनाम न करें बल्कि यह विश्वास रखें कि वह हमसे बहुत बड़े हैं और उन्होंने जो काम किया है उसकी तुलनामें हम लोगोंका काम बहुत छोटा है। कई समाचारपत्र उनके सम्बन्धमें निरादर व्यक्त करते हैं। ऐसे लेखोंका प्रतिवाद करना हमारा कर्तव्य है। अध्यापक गोखले जैसे पुरुषोंको स्वराज्यके आधारस्तंभ समझना चाहिये। दूसरोंके विचारोंको

खराब और अपने विचारोंको अच्छा बतलाने और भिन्न विचारवाले पुरुषोंको देशके शत्रु कहनेकी आदत बड़ी खराब है।

पाठक—अब कुछ कुछ मैं आपका मतलब समझने लगा। इस विषयपर अब मुझे सोचना पड़ेगा, पर मि० ह्यूम और विलियम वेडरबर्नके बारेमें आप जो कुछ कहते हैं वह मेरी समझमें नहीं आ सकता।

संपादक—हिन्दुस्थानियोंकी जो बात है वही अंगरेजोंकी है। मैं इस उक्तिका समर्थन नहीं कर सकता कि अंगरेज मात्र खराब है। बहुतसे अंगरेज हिन्दुस्थानको स्वराज्य दिलानेके पक्षमें हैं। यह बात सच है कि अङ्गरेज औरोंसे अधिक स्वार्थी होते हैं पर इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि हर अंगरेज बुरा ही होता है। हमलोग यदि अपने लिये न्याय चाहते हैं तो हमें दूसरोंके साथ भी न्याय करना चाहिये। सर विलियम हिन्दुस्थानका बुरा नहीं चाहते—इतना ही क्या कम है? आगे चल कर आप देखेंगे कि यदि हम न्यायके साथ काम करें तो हिन्दुस्थान बहुत जल्द स्वतंत्र हो जायगा। यह भी आप देखेंगे कि यदि हम अंगरेज मात्रको अपना शत्रु समझेंगे तो स्वराज्यमें विलंब होगा। पर यदि हम उनके साथ न्यायका बर्ताव करें तो हमारे उद्देश्यकी सिद्धिके साधनमें वे भी सहायक होंगे।

पाठक—अभी तो मुझे यह सब बेमतलबकी बात मालूम होती है। अंगरेज सहायता करें और हमें स्वराज्य मिले, ये दोनों बातें परस्परविरोधी हैं। अङ्गरेज भला हम लोगोंका

स्वराज्य कभी पसन्द करेंगे? पर मैं आपसे अभी यह नहीं चाहता कि आप इस प्रश्नका निर्णय कर दें। इसपर विचार करनेमें समय बिताना व्यर्थ है। आप यह दिखला दीजिये कि हम लोगोंको स्वराज्य कैसे मिल सकता है तो संभव है कि मैं आपके विचारोंको समझ सकूं। आपने जो यह कहा कि अंगरेज हमारे सहायक होंगे इससे आपके प्रति मेरी श्रद्धा कुछ घट गयी। इसलिये आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि इस विषयको अब आगे मत चलाइये।

संपादक—ऐसा करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। आपकी श्रद्धा यदि मुझपरसे हट गयी तो यह कोई बड़ी भारी चिन्ताका विषय नहीं है। आरम्भमें ही कड़ुई बातें कह देना अच्छा होता है। मेरा यह कर्तव्य है कि धीरजके साथ आपका कुसंस्कार दूर करनेकी चेष्टा करूं।

पाठक—आपकी यह अन्तिम बात मुझे अच्छी लगी। एक बातसे मैं अब भी हैरान हूं। यह मेरी समझमें नहीं आता कि कांग्रेसने, आप कैसे कहते हैं कि, स्वराज्यकी नींव डाली।

संपादक—देखिये। कांग्रेसने भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लोगोंको एकत्र किया और उनमें राष्ट्रीयत्वकी कल्पनाका प्राण संचारित कर दिया। सरकार कांग्रेसको वक्र दृष्टिसे ही देखती थी। कांग्रेस बराबर यही बात कहती आयी है कि देशकी आय और व्यय देशके ही हाथमें होना चाहिये। कांग्रेस सदासे ही कैनाड़ाके ढंगका स्वराज्य चाहती रही। यह मिल

सकता हो या न मिल सकता हो, हम इस प्रकारका स्वराज्य चाहते हों या न चाहते हों, अथवा हम लोग चाहे इससे भी अधिक और कुछ चाहते हों, ये बिलकुल स्वतन्त्र प्रश्न हैं। मुझे केवल इतना ही देखना है कि कांग्रेसने हमें स्वराज्यका चसका लगाया या नहीं। उसके संमानसे उसे वंचित करना उचित नहीं है। और हम लोगोंके लिये तो ऐसा करना केवल अकृतज्ञता ही नहीं बल्कि अपने उद्देश्यकी सिद्धिके मार्गसे ही पीछे हटना है। यदि हम ऐसा समझें कि हमारे राष्ट्रकी वृद्धि या उत्थानके लिये कांग्रेस एक विघ्न है तो हम लोग उस संस्थासे काम लेनेमें असमर्थ होंगे।

दूसरा परिच्छेद

वंगविच्छेद

पाठक—आपकी विचारपद्धति देखते हुए यह कहना उचित प्रतीत होता है कि कांग्रेसनेही स्वराज्यकी नींव डाली। पर आपको यह मानना पड़ेगा कि इसे वास्तविक जागृति नहीं कह सकते। वास्तविक जागृति कब और कैसे हुई?

संपादक—बीज कभी दिखायी नहीं देता। वह जमीनके अन्दर काम करता और उसीमें मिल जाता है, और वह वृक्षही केवल दिखायी देता है जो जमीनसे ऊपर निकलता है। कांग्रेस-की भी यही बात है। फिर भी, आप जिसे वास्तविक जागृति कहते हैं, वह वंगविच्छेदके उपरान्त हुई। इसके लिये हमें लार्ड कर्जनके कृतज्ञ होना चाहिये। वंगविच्छेदके समय वंगालियोंने लार्ड कर्जनको बहुत समझाया, पर अधिकारमदसे उन्मत्त लार्ड कर्जनने उनकी प्रार्थनाओंका कुछ ख्याल न किया—उन्होंने यह समझ लिया कि हिन्दुस्थानी खाली बकवाद करना जानते हैं —उनका किया कराया कुछ न होगा। उन्होंने अपमान करने-वाली बातें कहीं और घोर विरोध रहते हुए भी, वंगविच्छेद कर डाला। जिस दिन वंगविच्छेद हुआ वह ब्रिटिश साम्राज्यके विच्छेदका दिन समझना चाहिये। वंगविच्छेदसे ब्रिटिश साम्रा-

ज्यकी जो धक्का लगा वैसा और किसी बातसे नहीं लगा था। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतके साथ और और जो अन्याय हुए हैं वे बंगविच्छेदसे कुछ कम हैं। नमकका कर कोई मामूली अन्याय नहीं है। ऐसी बहुतसी बातें और भी हैं जो आगे चल कर देखेंगे। पर बंगविच्छेदका विरोध करनेके लिये लोग तैयार थे। उस समय बड़ी उद्दीपना फैली। अनेक प्रमुख बंगाली अपना सर्वस्व न्योछावर करनेके लिये तैयार हो गये। वे अपनी शक्तिको पहचानते थे; इसीलिये दावानल प्रज्वलित हुआ। यह अब बुझ नहीं सकता, न बुझानेकी कोई आवश्यकता है। बंग-विच्छेद रद्द होगा, बंगाल फिरसे जुड़ जायगा; पर ब्रिटिश नौकामें जो दरार पड़ गयी है वह न मिटेगी, दिन दिन वह चौड़ी ही होती जायगी। जागृत हिन्दुस्थान अब सो नहीं जायगा। बंगविच्छेद रद्द करानेके लिये जो आन्दोलन हो रहा है वह स्वराज्यका ही आन्दोलन है। बंगालके नेता इस बातको जानते हैं, ब्रिटिश अधिकारी भी इसे समझते हैं। इसी कारणसे अबतक बंगविच्छेद रद्द नहीं हुआ है। दिन दिन राष्ट्र दृढ़ हो रहा है। राष्ट्र एक दिनमें ही तैयार नहीं हो जाते; बरसों तैयारी होती रहती है।

पाठक—आपके विचारमें बंगविच्छेदसे क्या क्या परिणाम हुए हैं?

संपादक—इससे पहले लोग यह समझते थे कि अपनी शिकायतें दूर करानेके लिये हमलोगोंको बादशाहसे प्रार्थना करनी चाहिये, और इससे यदि शिकायतें दूर न हों तो हम लोगोंको

चुप रहना चाहिये, या फिरसे प्रार्थना करनी चाहिये। वंगविच्छेदके वाद लोगोंने यह सोचा कि प्रार्थनापत्रोंके पीछे कोई वल होना चाहिये, और हम लोगोंको आत्मवलिदान करना सीखना चाहिये। यह नवीन भाव वंगविच्छेदका प्रधान फल समझना होगा। समाचारपत्रोंके निर्भीक लेखोंमें यह भाव दिखायी दिया। लोग पहले जो वात कांपते हुए और एकान्तमें कहते थे वही अव खुल्लमखुल्ला कहने और लिखने लगे। स्वदेशी आन्दोलन जारी हुआ। लोग, क्या वूढ़े और क्या जवान, पहले अंग्रेज गोरेको दूरसे देखतेही भागते थे; अव वह डर जाता रहा। मार खाने या कैद होनेसे भी उन्हें अव कोई डर न रहा। भारतमाताके कुछ सच्चे सपूत इस समय काले पानीपर हैं। केवल प्रार्थनापत्र भेजनेसे ये वातें वहुत भिन्न हैं। इस प्रकार जनता जागृत हुई है। वंगालमें जो भाव उत्पन्न हुआ वह उत्तरमें पंजाव और दक्षिणमें कन्याकुमारीतक फैल गया है।

पाठक—और भी कोई विशेष परिणाम आप वतला सकते हैं?

संपादक—वंगविच्छेदने केवल व्रिटिश नौकाही विच्छिन्न नहीं की, हम लोगोंको भी विच्छिन्न किया है। महान् घटनाओंके महान् ही परिणाम होते हैं। हमारे नेताओंके दो दल हो गये हैं—नरम और गरम। इन्हें सुस्त दल और उतावला दल भी कह सकते हैं। कुछ लोग नरम दलको कायर और गरम दलको साहसी कहते हैं। जैसे जिसके ख्याल पहलेसे वने हुए होते हैं वैसाही वह इन नामोंका अर्थ करता है। इसमें सन्देह नहीं कि

इन दो दलोंमें शत्रुता उत्पन्न हो गयी है। दोनो दल परस्परसे अलग रहते और एक दूसरेके चरित्रकी निन्दा करते हैं। सूरत कांग्रेसके समय तो एक तरहसे लड़ाई ही हो गयो। मैं समझता हूं, यह फूट देशके लिये अच्छी नहीं है, पर मैं यह समझता हूं कि यह फूट बहुत कालतक न रहेगी। नेता चाहेंगे उसी रोज यह दूर हो जायगी।

तीसरा परिच्छेद

असन्तोष और अशान्ति

पाठक—तो आप यह समझते हैं कि बंगविच्छेदसे जागृति हुई? उससे जो अशान्ति उत्पन्न हुई है क्या उसे आप पसन्द करते हैं?

संपादक—मनुष्य जब सोकर उठता है तो अंगड़ाई लेता और बेचैन रहता है। अच्छी तरहसे जाग उठनेके लिये उसे कुछ समय लगता है। उसी प्रकार बंगविच्छेदसे यद्यपि जागृति हुई है तथापि वह ग्लानि अभी दूर नहीं हुई है। अभी हमलोग अंगड़ाई ले रहे हैं और अच्छी तरह जाग नहीं उठे हैं, और जैसे निद्रा और जागृतिके बीचकी अवस्था भी आवश्यक होती है वैसेही हिन्दुस्थानकी वर्तमान अशान्ति एक आवश्यक और उचित अवस्था है। अशान्तिके अस्तित्वका ज्ञानही, बहुत संभव है कि हम

लोगोंको जाग्रत करेगा। निद्रासे जागतेही जो ग्लानिकी अवस्था रहती है वह देरतक नहीं रहती पर अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार हमलोग कुछ या अधिक समयमें अच्छी तरह जाग जाते हैं। इसी प्रकार इस वर्तमान अशान्तिसे हमलोग अवश्य ही मुक्त होंगे।

पाठक—अशान्तिका दूसरा स्वरूप क्या है?

संपादक—अशान्ति यथार्थमें असन्तोष है। असन्तोषको ही आजकल अशान्ति कहने लगे हैं। कांग्रेसके शुरू जमानेमें यह असन्तोष ही कहा जाता था; मि० ह्यूम सदाही यह कहा करते थे कि हिन्दुस्थानमें असन्तोषके फैलनेकी आवश्यकता है। यह असन्तोष बड़ी उपयोगी वस्तु है। जबतक मनुष्य अपनी वर्तमान स्थितिसे सन्तुष्ट रहता है तबतक वह उससे बाहर नहीं निकल सकता। किसी वस्तुसे जब तिरस्कार उत्पन्न होता है तभी हम उसे फेंक देते हैं। हिन्दुस्थानियों और अंग्रेजोंके बनाये बड़े बड़े ग्रन्थ पढ़नेसे ही हम लोगोंमें यह असन्तोष उत्पन्न हुआ है। असन्तोषसे अशान्ति उत्पन्न हुई और इस अशान्तिके कारण कितनोंका देहान्त, और कितनोंको कारावास हुआ। अभी और कुछ कालतक यही अवस्था रहेगी। रहनी ही चाहिये। ये सब अच्छे लक्षण समझे जा सकते हैं पर इनसे बुरे परिणाम भी हो सकते हैं।

चौथा परिच्छेद

स्वराज्य क्या है ?

पाठक—अब मुझे यह मालूम हो गया कि हिन्दुस्थानको एक राष्ट्र बनानेके लिये कांग्रेसने क्या किया, बंगविच्छेदने कैसे जागृति उत्पन्न की, और कैसे असन्तोष और अशान्ति देशभरमें फैल गयी। अब मैं स्वराज्यके सम्बन्धमें आपके विचार सुनना चाहता हूं। संभव है, स्वराज्यके अर्थके सम्बन्धमें हमारा आपका मतभेद हो।

संपादक—यह बहुत संभव है कि स्वराज्यका अर्थ हम कुछ करते हों और आप कुछ और। आप, मैं और समस्त भारतवासी स्वराज्य पानेके लिये उत्कंठित हो उठे हैं, पर हम लोगोंने अभी यह निश्चय नहीं किया कि स्वराज्य क्या है। बहुतसे लोगोंके मुंह यह सुना गया है कि अंग्रेजोंको हिन्दुस्थानसे निकाल बाहर करना ही स्वराज्य है, पर ऐसा क्यों हो इसपर भी किसीने विचार किया है ? मैं आपसे एक प्रश्न करता हूं, यदि हमलोग जो कुछ चाहते हैं यह हमें मिल जाय तो क्या आप इस हालतमें भी अंग्रेज़ोंको निकाल देना आवश्यक समझते हैं ?

पाठक—मैं उनसे एकही बात कहूंगा, कि—"कृपाकर यहांसे चले जाइये"। इस बातको वे स्वीकार कर लें तो उनके चले

जानेका अर्थ यही होगा कि वे हिन्दुस्थानमेंही रहें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। तब हमलोग यही समझेंगे कि हमारी भाषामें "गये" और "रह गये" दोनों एकही अर्थके शब्द हैं।

संपादक—अच्छा तो यह मान लीजिये कि अंग्रेज चले गये। तब आप क्या करेंगे?

पाठक—इस प्रश्नका उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता। उनके चले जानेके बादकी अवस्था क्या होगी सो उनके चले जानेके ढंगसे निश्चित होगी। यदि वे जैसा कि आप कहते हैं चले गये तो मैं समझता हूं कि राजकाजका ढंग वही बना रहेगा और राजकाज होता रहेगा। यदि वे कहनेसे ही चल दें तो हमारे पास तैयार फौज रहेगी। तब हमें शासनकार्य चलानेमें कोई कठिनाई न होगी।

संपादक—आप ऐसा समझते हैं; मैं नहीं। पर अभी मैं इसकी चर्चा न करूंगा। मुझे आपके प्रश्नका उत्तर देना है और यह काम आपसे ही कई प्रश्न करके मैं और आसानीसे कर सकूंगा। आप अंग्रेज़ोंको क्यों निकाल बाहर करना चाहते हैं?

पाठक—क्योंकि हिन्दुस्थान उनके शासनसे कंगाल हो गया। वे साल बसाल हमारी संपत्ति ढोये चले जा रहे हैं। सबसे बड़ी बड़ी जगहें उन्हींके लिये रिजर्व रहती हैं? हमलोग एक तरहकी गुलामीकी हालतमें रखे जाते हैं। हमारे साथ वे उद्दण्डतासे पेश आते हैं और हमारे विचारोंका कुछ भी ख्याल नहीं रखते।

संपादक—यदि वे हमारी संपत्ति न ले जायं, नम्रता धारण करें, और बड़ी बड़ी जगहें हमें दें तो क्या इस अवस्थामें भी आप उनका यहां रहना हानिकारक समझते हैं ?

पाठक—यह प्रश्न व्यर्थ है। यह वैसाही प्रश्न है जैसे कोई यह कहे कि शेर यदि अपना स्वभाव बदल दे तो उसके साथ रहनेमें क्या हानि है। यह प्रश्न करना केवल समय नष्ट करना है। जब शेर अपना स्वभाव बदलेगा तभी अंगरेज़ भी अपना स्वभाव बदलेंगे। यह संभव नहीं है और इसे संभव समझना मानवी अनुभवका विरोध करना है।

संपादक—मान लीजिये कि हमलोगोंको कैनाडा या दक्षिण अफ्रिकाके ढंगका स्वराज्य मिल गया तो यह ठीक होगा ?

पाठक—यह प्रश्न भी बेकार है। हमें यह स्वराज्य तब मिल सकता है जब हममें उतनी शक्ति हो। तभी हम लोगोंका झण्डा फहरेगा। जापान जैसा है, वैसाही हिन्दुस्थानको भी होना पड़ेगा। हमारी अपनी जलसेना, अपनी स्थलसेना और अपनी ही गौरव-गरिमा होनी चाहिये और तब हिन्दुस्थानकी आवाज़ संसारके नभोमंडलमें गूंजने लगेगी।

संपादक—आपने अच्छा चित्र खींचा। इसका वास्तविक अर्थ यह हुआ कि हम लोग अंग्रेज़ी शासन चाहते हैं पर अंग्रेज़ों-को नहीं। आप शेरकी प्रकृति चाहते हैं, पर शेर नहीं; अर्थात् आप हिन्दुस्थानमें अंग्रेज़ियत भर देना चाहते हैं। पर जब इसमें अंग्रेज़ियत आ जायगी तब यह हिन्दुस्थान नहीं बल्कि इंगलिस्तान कहलावेगा। मैं ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता।

पाठक—स्वराज्य कैसा होना चाहिये इस सम्बन्धमें मेरी जो कल्पना है वह मैंने आपके सामने रखदी है। हम लोगोंको जो शिक्षा मिली है उसका यदि कुछ उपयोग हो, स्पेन्सर, मिल तथा अन्य ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंका यदि कुछ महत्व हो, और यदि अंग्रेज़ी पार्लमेंट पार्लमेंटोंकी माता हो तो मैं यह जरूर कहूंगा कि हम लोगोंको अंग्रेजोंकी नकल करनी चाहिये और वह यहांतक कि जैसे वे अपने देशमें किसीको पैर रखने नहीं देते वैसेही हम लोग भी उन्हें या औरोंको अपने देशमें न आने दें। उन्होंने अपने देशमें जो कुछ किया है वह और किसी देशमें नहीं हुआ है। इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि उनके कामोंकी अपने यहां नकल उतारें। पर अब मैं आपके विचार सुनना चाहता हूं।

संपादक—धीरजकी अवश्यकता है। इस संवादमें मेरे विचार आपही क्रमसे प्रकट होंगे। स्वराज्यका वास्तविक स्वरूप समझना मेरे लिये उतना ही कठिन हो रहा है जितना कि वह आपको सहज प्रतीत होता है। इसलिये अभी मैं आपसे इतनाही कह देता हूं कि आप जिसे स्वराज्य कहते हैं वह यथार्थ स्वराज्य नहीं है।

पांचवां परिच्छेद

इंगलैंडकी दशा

पाठक—तब तो आपके कहनेसे यह मालूम होता है कि इङ्गलैंडकी शासनपद्धति अच्छी नहीं है और उसका अनुकरण न करना चाहिये।

संपादक—आपने जो तात्पर्य निकाला यह बहुत ठीक है। इङ्गलैंडकी अवस्था इस समय बहुत ही शोचनीय हो रही है। ईश्वरसे मेरी यह प्रार्थना है कि हिन्दुस्थान इस दुर्गतिको कभी न प्राप्त हो। जिसे आप पार्लमेंटोंकी माता कहते हैं वह एक वंध्या और वेश्याके सामान है। ये दोनों शब्द कड़े हैं पर इस स्थानपर ठीक बैठते हैं। पार्लमेंटने आजतक स्वयं अपने मनसे कोई अच्छा काम नहीं किया इसलिये मैंने इसे वंध्या स्त्रीकी उपमा दी है। इस पार्लमेंटकी स्वाभाविक अवस्था ऐसी है कि विना बाहरी दबावके यह कोई काम ही नहीं कर सकती। यह वेश्याके समान यों है कि यह मंत्रियोंकी हुकूमतमें रहती है जो मंत्री बराबर बदलते रहते हैं। आज यदि यह मि० अस्किथके साथ है तो कल मि० बालफोरके साथ हो लेगी।

पाठक—आपने उसपर ताना मारा है। पर वंध्याकी उपमा यहां नहीं घटती। लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं, उनसे पार्ल-

मेंट बनती है इसलिये लोगोंके दबावसे उसे काम करना ही चाहिये। यह उसका धर्म है।

संपादक—आप भूलते हैं। और थोड़ा सूक्ष्म परीक्षण कीजिये। लोगोंका यह ख्याल है कि सबसे अच्छे आदमी ही लोगों द्वारा चुने जाते हैं। पार्लमेंटके मेंबर बिना वेतन लिये काम करते हैं। मानो जनताकी भलाईके लिये ही वे ऐसा करते हैं। निर्वाचक शिक्षित समझे जाते हैं और इसलिये यह मान लिया जाता है कि प्रतिनिधि-निर्वाचनमें वे प्रायः भूल नहीं करते। ऐसी पार्लमेंटको प्रार्थनापत्रोंके कोड़ोंकी या और किसी दबावकी जरूरत न रहनी चाहिये। इसका काम इतनी सफाईके साथ होना चाहिये कि उसका परिणाम उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रकट हो। परन्तु सच बात तो यह है कि सब लोग इन मेंबरोंको बेईमान और स्वार्थी समझते हैं। हर एक मेंबर अपने ही क्षुद्र स्वार्थकी चिन्ता करता है। डरसे सब काम होता है। आज कोई बात हो जाय तो कल वह रद्द भी हो सकती है। एक भी उदाहरण ऐसा न मिलेगा जहां यह कहा जा सके कि यह [illegible] सदाके लिये हो गया। जब बड़े महत्वके प्रश्नोंकी चर्चा हो [illegible] हो तो प्रायः यह देखा गया है कि मेंबर टांगें फैलाकर आराम करते और शराबके प्याले चढ़ाते हैं। कभी कभी मेंबर इतना बकते हैं कि श्रोताओंके नाकोंदम आ जाता है। कारलाइलने इस पार्लमेंटको "संसारकी बकवादकी दूकान" कहा है। मेंबर बिना सोचे अपने दलकी ओरसे मत दे दे[illegible] " जिसे कहते हैं

उसके कारण इन्हें ऐसा करना पड़ता है। यदि कोई मेंबर ऐसा निकल आया कि स्वतंत्र मत दे तो वह आवारा समझा जाता है। जिस पार्लमेंटपर इतना रुपया और समय खर्च किया जाता है वह यदि कुछ अच्छे आदमियोंके हाथमें होती तो अंग्रेज जाति आज बड़ी उन्नतिपर होती। पार्लमेंट क्या है, राष्ट्रका एक कीमती खिलौना है। ये अकेले मेरे ही विचार नहीं हैं। कुछ बड़े बड़े विचारशील अंगरेज इन विचारोंको पहले ही प्रकट कर चुके हैं। इसी पार्लमेंटके एक मेंबरने हालमें कहा था कि कोई सच्चा ईसाई इसका मेंबर नहीं हो सकता। एक दूसरे सज्जनके कहा था कि पार्लमेंट नन्हा बच्चा है। सात सौ वर्षकी आयुके बाद भी यदि यह बच्चा है तो इसका बचपन कब समाप्त होगा?

पाठक—आपने मेरे दिमागको फल घुमा दी। मैं आपके सब विचार एक साथ ही स्वीकार कर लूं यह नहीं हो सकता। आप एकदम नये विचार प्रकट कर रहे हैं। मुझे इन्हें धीरे धीरे हज़म कर लेने दीजिये। अब आप यह बतलाइये कि आप पार्लमेंटको "वेश्या" क्यों कहते हैं?

संपादक—आप मेरे विचारोंको एक साथही स्वीकार न करें यह बहुत ठीक है। इस विषयके ग्रन्थ आप पढ़ें तो इसकी कुछ कल्पना आपको हो जायगी। पार्लमेंटका कोई यथार्थ स्वामी नहीं है। प्रधान मंत्रीके अधीन इसकी स्थिति स्थिर नहीं रहती बल्कि वेश्याके समान इधर उधर हो जाती है। प्रधान मंत्रीको

पार्लमेंटके मंगलकी अपेक्षा अपने अधिकारका ही अधिक ख्याल रहता है। इसकी सारी शक्ति अपने दलका वल बढ़ानेमें खर्च होती है। इसे सदा इस वातका ख्याल नहीं रहता कि पार्लमेंट द्वारा ठीक ठीक काम हो। प्रधान्-मंत्रियोंने केवल अपने दलके सुभीतेके लिये पार्लमेंटका उपयोग किया है। ये सव वातें सोचनेकी हैं।

पाठक—तव तो आप उन्हीं पुरुषोंपर आक्रमण कर रहे हैं जिन्हें हम अतवक देशभक्त और सच्चे समझते आये?

संपादक—हां, यह सच है; प्रधान मंत्रियोंसे मेरी कोई अदावत नहीं हो सकती, पर जो कुछ मैंने देखा है उससे मुझे यह कहना पड़ता है कि इन्हें देशभक्त समझना भूल है। ये लोग रिश्वत जिसे कहते हैं वह नहीं लेते इसीलिये इन्हें सच्चे भलेही कह लीजिये पर ये मनोविकारोंके दास होते हैं। अपना मतलब साधनेके लिये ये लोगोंको उपाधियोंकी रिश्वत दिया करते हैं। मैं यह वेखटकके कहता हूं कि इनमें न तो सचाई होती है और न जीती जागती विवेकबुद्धि ही।

पाठक—पार्लमेंटके संवंधमें जैसे आपने विचार प्रकट किये वैसेही अंग्रेज जातिके वारेमें भी कहिये जिसमें मुझे उनकी शासनपद्धतिके संवंधमें आपकी राय मालूम हो जाय।

संपादक—अंग्रेज वोटर या मतदाताओंका वाइवल समाचारपत्र है। समाचारपत्रोंसेही ये अपना मत वना लेते हैं और

भिन्न भिन्न समाचारपत्र उसे भिन्न भिन्न रूपमें प्रकट करते हैं-जिस दलका जो समाचारपत्र होता है वह उसी दलका स्वार्थ देखकर वैसी बात कहता है। किसी बड़े आदमीको कोई समाचारपत्र तो सचाईका प्रत्यक्ष अवतार बतलाता है और कोई उसे ठग कहता है। जिन लोगोंके समाचारपत्र ऐसे हैं उनकी क्या दशा होगी?

पाठक—आप बतलाइये।

संपादक—ये लोग अपने विचार बदलते रहते हैं। यह कहनेकी परिपाटी पड़ गयी है कि ये लोग हर सातवें वर्ष अपने विचार बदल देते हैं। ये विचार घड़ीके पेंड्युलमकी तरह इधरसे उधर झोंका खाया करते हैं, कहीं स्थिर नहीं होते। कोई प्रभावशाली वक्ता हो या कोई उन्हें भोजपर भोज दिया करे तो लोग उसे नेता मान लेते हैं। जैसे लोग हैं वैसीही उनकी पार्लमेंट है। पर एक गुणका उनमें खूब विकाश हुआ है। कभी अपने देशको वे दूसरेके अधीन न होने देंगे। यदि कोई उनके देशको कुदृष्टिसे देखे तो वे उसकी आंखें निकाल लेंगे। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि और सब गुण भी उस जातिमें वर्तमान हैं या उस जातिका हमें अनुकरण करना चाहिये। यदि हिन्दुस्थान इङ्गलैण्डकी नकल उतारेगा तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुस्थान मटियामेट हो जायगा।

पाठक-इङ्गलैण्डकी इस दुर्दशाका कारण आप क्या समझते हैं?

संपादक—अंग्रेज जातिके किसी विशेष दोषका यह फल है

सो नहीं बल्कि इस दशाका कारण आधुनिक सभ्यता है। यह केवल नामकी सभ्यता है। इस सभ्यताके मारे यूरोपके राष्ट्र दिन दिन गिरते और नष्ट होते जा रहे हैं।

छठा परिच्छेद

सभ्यता

पाठक—अब आपको यह बतलाना चाहिये कि आप सभ्यता किसे समझते हैं।

संपादक—मैं क्या समझता हूं इसका कोई सवाल नहीं है। बहुतसे अंग्रेज ग्रन्थकार उसे सभ्यताही नहीं समझते जिसे आजकलके लोग सभ्यता कहते हैं। इस विषयपर कई ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। इस सभ्यताकी बुराइयोंसे देशका उद्धार करनेके लिये कितनी ही सोसाइटियां बनी हैं। एक बड़े अंग्रेज ग्रन्थकारने ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है—"सभ्यता—उसका कारण उपाय"। उसमें सभ्यताको ग्रन्थकारने एक रोग कहा है।

पाठक—हमलोगोंको इसकी खबर क्यों नही?

संपादक—इसका उत्तर बहुत सरल है। जो लोग जो काम हैं उसका खंडन वे नहीं किया करते। जिनपर आधुनिक नशा सवार है वे उसके विरुद्ध भला क्यों लिखने ? वे तो उसका समर्थन करनेवाली बातोंको ही ढूंढते फिरेंगे

और यह काम वे जान बूझकर नहीं करते—उनके संस्कारही ऐसे होते हैं। मनुष्य जब सपना देखता है तो यही समझता है कि यह सच है। जब उसकी नींद टूटती है तभी उसकी आंख खुलती है और उसे यह मालूम होता है कि अरे यह सब झूठ था। जो मनुष्य सभ्यताके नशेमें चूर है वह स्वप्न देख रहा है। जो ग्रन्थ हमलोग पढ़ते हैं वे आधुनिक सभ्यताके पक्षपातियोंकेही लिखे होते हैं—इनमें कई बड़े बड़े पंडित और कई वास्तवमें बड़े सात्विक लोग हैं। उनके लेख हमलोगोंपर जादू करते हैं। और इस प्रकार एक एक करके हमलोगके आधुनिक सभ्यताके चक्करमें आ जाते हैं।

पाठक—आपका यह कहना सत्यसा प्रतीत होता है। अब कृपाकर आप यह बतलाइये कि इस सभ्यताके बारेमें आपने क्या सोचा और क्या पढ़ा है।

संपादक—पहले यह सोच लें कि "सभ्यता" किस अवस्थाको कहते हैं। इसकी सच्ची कसौटी यही है कि इस सभ्यताके अनुयायी शरीरसुखको ही अपने जीवनका सर्वस्व मानते हैं। इसके कुछ दृष्टान्त लीजिये। यूरोपके लोग सौ वर्ष पहले जैसे मकानोंमें रहते थे उनसे बहुत अच्छे मकानोंमें आजकल रहते हैं। सभ्यताका यह एक चिह्न समझा जाता है, और यह शरीर सुख बढ़ानेकी ही एक बात है। पहले ये लोग चमड़ा पहनते थे और भालेही उनके हथियार थे। अब वे पतलून और शृङ्गारके लिये कई तरहके कपड़े पहनते हैं, और भालोंके बदले

पांच पांच या छः छः नालियोंके पिस्तौलें पास रखकर बाहर निकलते हैं। जिस देशके लोग अबतक कोट, पतलून चढ़ाने और नेकटाई, कालर लगानेके आदी नहीं हुए हैं वे यदि यूरोपियन ढंगके कपड़े पहनते हैं तो यह समझा जाता है कि अब ये सभ्य हुए। पहले यूरोपके लोग शारीरिक श्रम द्वाराही जमीन जोतते थे। अब इंजनके सहारे एक आदमी एक चकका चक जमीन जोत लेता है, और इस तरह बहुत रुपया पैदा कर सकता है। यह सभ्यताका लक्षण कहा जाता है। पहले,बहुतही थोड़े आदमी ग्रन्थ लिखते थे। अब जिसके मनमें जो आता है लिख डालता है और छपवाकर लोगोंके मनमें ज़हर डाल देता है। पहले लोग बैल गाड़ियोंमें सवार हो कर यात्रा करते थे, अब वे चार पांच सौ मील घंटेके हिसाबसे हवाई जहाजोंमें बैठकर उड़ा करते हैं। यह सभ्यताकी पराकाष्ठा समझी जाती है। यह कहा जाता है कि मनुष्य जब थोड़ी उन्नति और कर लेगा तो वह हवाई जहाजमें बैठकर कुछही घंटोंमें दुनियाके एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुंच जायगा। मनुष्यको अपने हाथ पांवकी ज़रूरत न रहेगी। बटन दबानेसेही सब काम हो जाया करेगा। एक बटन दबाया, पहननेका कपड़ा सामने आ गया; दूसरा दबाया, अखबार हाथमें आया; तीसरा दबाया, दरवाजेपर मोटर गाड़ी आकर खड़ी हो ी। खाना तरह तरहका खानेको मिला करेगा। सब काम हुआ करेगा। पहले जमानेमें जब लोग आपसमें लड़ना चाहते तो उन्हें अपने शरीरका बल ही दिखलाना पड़ता; अब एक

पहाड़ोंके पीछे छिपकर तोपसे एकही आदमी हजारों आदमियोंकी जान ले सकता है। पहले, लोग मैदानमें, अपने मन मुआफिक काम करते थे। अब हजारों मजूर जीविकाके लिये खानों और कारखानोंमें एक साथ काम करते हैं। उनकी हालत पशुओंसे भी गिरी हुई है। उन्हें करोड़पतियोंके फायदेके लिये ऐसे ऐसे स्थानोंमें काम करना पड़ता है जहां जानका खतरा हो। पहले लोग जबर्दस्ती गुलाम बनाये जाते थे, अब रुपयेके लोभसे या रुपयेसे मिलनेवाले ऐशसे बनाये जाते हैं। अब ऐसे ऐसे रोग उत्पन्न हुए हैं जो पहले स्वप्नमें भी न देखे गये थे, और डाक्टरोंकी एक बड़ी भारी सेना उन रोगोंके इलाज ढूंढ निकालनेमें लगी हुई है और इस तरह अस्पतालोंकी संख्या खूब बढ़ी है। सम्यताकी यह एक कसौटी है। पहले चिट्ठियां भेजनेके लिये सांढ़नी ढूंढने पड़ते थे और बड़ा खर्च पड़ता था, अब कोई भी एक पैसेमें एक चिट्ठी लिखकर चाहे जिसको गालियां दे सकता है। हां, यह भी सच है कि चिट्ठी लिखकर धन्यवाद भी दे सकता है। पहले लोग दिनमें दो या तीन बार खाते थे और घरकी बनी रोटी और तरकारीही खाते थे, अब हर दो घंटे बाद उन्हें भोजन चाहिये जिसमें और किसी कामके लिये उन्हें फुरसतही न रहे। और अधिक मैं क्या कहूं? कई प्रमाणभूत ग्रन्थोंको देख कर आप इन बातोंको जान सकते हैं। ये सब सम्यताके लक्षण हैं। और यदि कोई इन लक्षणोंके विरुद्ध कुछ कहे तो यह समझ लीजिये कि वह मूर्ख है। इस सम्यतामें नीति या धर्मका कुछ काम नहीं।

इस सभ्यताके उपदेशकशिरोमणि बतलाते हैं कि धर्मकी शिक्षा देना हमारा विषय नहीं। कुछ लोग तो धर्मको अन्धश्रद्धाही कहते हैं। कुछ धर्मका लिवास पहनकर नीतिमत्ताकी हत्या किया करते हैं। पर २० वर्षके अनुभवके पश्चात् मैंने जिन बातों-का वर्णन किया है उनमें कोई भी बात ऐसी नहीं जो किसीको सच्चरित्र बननेकी ओर प्रवृत्त कर सके। सभ्यताका काम सिर्फ ऐश बढ़ाना है, पर इसमें भी वह कामयाब नहीं होती।

यह सभ्यता अधर्म है और यूरोपवालोंको इसने ऐसा जकड़ डाला है कि इस सभ्यताके चंगुलमें फंसे हुए लोग निमपागल ही मालूम देते हैं। इनमें न शारीरिक बल है, न साहस ही। नशेके जोरपर ये काम करते हैं। एकान्तमें इन्हें आनन्द मिल नहीं सकता। स्त्रियां जो घरकी मालकिन होनी चाहियें सड़कों-पर भटका करती हैं या कारखानोंमें गुलाम होकर रहती हैं। पेटकी आग सिर्फ बुझानेके लिये अकेले इङ्गलैंडमें ५ लाख स्त्रियां कारखानों या वैसेही स्थानोंकी मुसीबतें झेल रही हैं। यह दुर्दशा भी विलायतकी स्त्रियोंके आन्दोलनका एक कारण है।

यह ऐसी सभ्यता है कि धैर्य धारण कर बैठ रहिये और देखिये, यह आप ही नष्ट हो जायगी। पैगंवर महम्मदकी शिक्षाके अनुसार इस सभ्यताको शैतानी सभ्यता कहना होगा। हिन्दू धर्म इसे कलियुग कहता है। इसका पूरा भाव मैं प्रकट नहीं कर सकता। यह अंग्रेज जातिके प्राण हरण कर रही है। यह तिरस्कारही करने योग्य है। पार्लमेंटको गुलामीकी निशानीही

समझिये। यदि आप इसपर अच्छी तरह विचार करेंगे तो आपकोभी यही राय होगी और इसके लिये आप अंग्रेजोंको दोष न देंगे। उनपर तो बल्कि दया करनी चाहिये। यह जाति बुद्धिमान है और इसलिये मुझे आशा है कि इस बुराईको यह छोड़ देगी। अंग्रेज पराक्रमी और उद्योगी होते हैं और उनकी विचारपद्धति स्वभावतः अनीतिमूलक नहीं है। उनका हृदय भी कुटिल नहीं है। इसलिये मैं उनकी इज्जत करता हूं। सभ्यता कोई ऐसा रोग नहीं है जिसका इलाज न हो, पर इस बातको कोई न भूले कि इस समय अंग्रेज जाति इस रोगमें ग्रस्त है।

सातवां परिच्छेद

भारतवर्ष पराधीन क्यों हुआ ?

पाठक—आपने सभ्यताके बारेमें बहुत कुछ कहा—मैं भी सोचने ही लग गया। अब मेरी समझमें यह नहीं आता कि यूरोपवालोंकी कौन बात हमें लेनी चाहिये और कौन छोड़नी चाहिये। पर एक प्रश्न मैं करता हूं। यदि सभ्यता एक रोग है और यदि इंगलैण्ड उस रोगसे ग्रस्त है तो वह हिन्दुस्तानको कैसे दखल कर सका, और अबतक किये हुए है ?

संपादक—आपके प्रश्नका उत्तर देना कुछ कठिन नहीं है,

और अब स्वराज्यके असली रूपकी भी परीक्षा कर सकेंगे; क्यों कि मुझे याद है कि अभी मुझे आपके उस प्रश्नका उत्तर देना है। फिरभी मैं आपके प्रथम प्रश्नको ही लेकर आगे चलता हूं। अंगरेजोंने खुद हिन्दुस्थान नहीं लिया, हम लोगोंने उन्हें दे डाला। वे हिन्दुस्थानमें अपने बलपर नहीं है, बल्कि हम लोगोंने उन्हें रखा है। अब देखें ये बातें कहांतक ठहरती हैं। ये लोग पहले पहल हिन्दुस्थानमें व्यापारके निमित्त आये। कंपनी बहादुरका ज़माना याद कीजिये। इसको बहादुर किसने बनाया? उस समय इनको राज्य स्थापन करनेका ज़रा भी ख्याल न था। कंपनीके नौकरोंकी किसने मदद की? उनकी चांदी देखकर कौन मोहित हुआ? किसने उनका माल उनसे खरीदा? इतिहास साक्षी है कि यह सब हम लोगोंने किया। एकदम अमीर बन जानेके ख्यालसे हम लोगोंने कंपनीके नौकरोंको गले लगाया। उनकी हर तरहसे मदद की। यदि मैं भंग पीनेका आदी हूं, और भंग बेचनेवाला मेरे हाथ अपनी भंग बेचे तो यह किसका दोष है। उसका या मेरा? भंग बेचनेवालेको दोष देकर क्या भंग पीनेकी मेरी आदत छूट सकती है? और यदि एक नदारको आप भगा देंगे तो उसकी जगहपर दूसरा आ जा- । भारतके सच्चे सेवकको मामलेकी तहतक जाकर देखना । यदि बहुत खा लेनेसे मुझे अजीर्ण हुआ है, तो जलको देनेसे थोड़ेही वह दूर होगा? सच्चा वैद्य वही है जो रोगका बतलावे और यदि आप अपनेको हिन्दुस्थानको रोगकी

चिकित्सा करनेवाले वैद्य बताते हैं तो आपको उस रोगका कारण ढूंढ निकालना होगा।

पाठक—आप ठीक कहते हैं। अब आपको अपना सिद्धान्त समझानेमें मेरे साथ बहुत माथापच्ची न करनी पड़ेगी। मैं आपके और विचार जानना चाहता हूं। इस समय बड़ा ही मनोरंजक विषय छिड़ा है। इसलिये आप बोलते चलिये, मैं सुनता चलूं। जहां सन्देह होगा वहां पूछ लूंगा।

संपादक—आपका उत्साह तो खुब बढ़ा है पर यह विषय जब और आगे बढ़ेगा तब कहीं मतभेद न हो जाय। जो हो, जहां आप रोकेंगे वहीं आपका शंकासमाधान करनेका यत्न करूंगा। यह तो हम लोग देख चुके कि हिन्दुस्तानमें अंग्रेज व्यापारियोंके पैर जमनेके कारण हमी लोग हैं क्योंकि हमीने उन्हें उत्साहित किया था। जब हमारे राजा महाराजा आपसमें लड़ते तो कंपनी बहादुरसे मदद मांगते। कंपनी व्यापारकुशल भी थी और युद्धकुशलभी। सदाचारके विचारसे उसका कोई कार्य रुकता नहीं था। उसका उद्देश्य ही रोजगार बढ़ाना और पैसा कमाना था। हम लोगोंकी ही सहायता ये लोग स्वीकार करते और अपने मालगोदाम बढ़ाते। मालगोदामोंकी रक्षाके लिये, ये सेना रखते और इस सेनासे हम लोग भी काम लेते। अब सोचिये, हम लोगोंने जो कुछ किया उसका फल पाया, उसके लिये अंग्रेजोंको दोष देनेसे क्या मतलब ? हिन्दु और मुसलमान एक दूसरेकी जानके गाहक रहते थे इससे कंपनीको अच्छा मौका मिला, और

इस प्रकार हम लोगोंने ऐसी अवस्था उत्पन्न की कि हिन्दुस्थानमें कंपनीका दखल हो गया। इसलिये यह नहीं कह सकते कि अंगरेजोंने हिन्दुस्थान लिया वल्कि यह कह सकते हैं कि हिन्दुस्थान हम लोगोंने अंगरेजोंके हवाले किया।

पाठक—अब कृपाकर यह बतलाइये कि ये लोग हिन्दुस्थानको अपने हाथमें कैसे रखे हुए हैं?

संपादक—जिन कारणोंने उन्हें हिन्दुस्थान दिलाया उन्हीं कारणोंसे वे उसे अपने हाथमें रखे हुए हैं। कुछ अंगरेज कहा करते हैं कि हम लोगोंने शस्त्रके बलसे हिन्दुस्थान लिया और शस्त्रके बलसेही उसे अपने अधीन रखा है। ये दोनों बातें गलत हैं। हिन्दुस्थानको आधीन रखनेमें शस्त्र कुछ काम नहीं दे सकता। हमी लोगोंने यहां अंग्रेजोंको रखा है। कहते हैं कि नेपोलियन अंगरेजोंको दूकानदारोंकी कौम कहा करता था। अंगरेजोंका यह वर्णन यथार्थ है। वे किसी भी देशपर जो राज करते हैं वह अपने व्यापारके लिये करते हैं। उनकी जलसेना और स्थलसेना उस व्यापारकी रक्षा करनेके लिये हैं। ट्रान्सवालमें जब व्यापारका कोई [illegible] सिला न बैठा तब ग्लैडस्टनने यह पता लगाया कि [illegible] अपने अधीन रखना अंग्रेजोंके लिये उचित नहीं है। [illegible] चमकता हुआ देखा, तब उन्होंने विरोध [illegible] [illegible] गयी। मि० चैंबरलैनने यह बात ढूंढ निकाली कि [illegible] अंगरेजोंका [illegible] है [illegible] [illegible] कि एकबार [illegible] [illegible] लोगोंका [illegible] स्वर्गीय प्रेसि[illegible]

खान है या नहीं ? उन्होंने जवाब दिया, सोनेकी खान तो यहां न होगी क्योंकि यदि होती तो अंगरेज जरूर उसे अपने अधिकारमें कर लेते। बहुतसे प्रश्न इस बातको याद रखनेसे ही हल हो जाते हैं कि पैसाही उनका ईश्वर है। इससे यह सिद्ध होता है कि अंगरेजोंको हिन्दुस्थानमें हम लोगोंने अपने नीच स्वार्थके लिये रखा है। हम उनका व्यापार पसंद करते हैं। उनके तौर तरीके हमें भाते हैं और इसलिये वे जो चाहते हैं हमसे ले लेते हैं। इसके लिये उन्हें दोष लगाना उनके प्रभुत्वको स्थायी करना है। हम लोग आपसमें लड़ झगड़ कर उनका बल और भी बढ़ाते हैं। ये बातें यदि आप सच समझते हों तो इनसे यह सिद्ध होता है कि अंगरेज हिन्दुस्थानमें व्यापारके निमित्त आये। व्यापारके लिये ही वे यहां रहते हैं। और इस काममें हम उनकी मदद करते हैं। उनके हवें हथियार या गोलाबारूद कुछ भी काम नहीं दे सकती। इस संबंधमें मैं आपको याद दिलाता हूं कि जापानमें इस समय जो झंडा फहर रहा है वह जापानका नहीं, ग्रेट ब्रिटेनका है। जापानके साथ अंगरेजोंकी व्यापारसंबंधी एक सन्धि है, और आप देखियेगा, यदि अंगरेज अपनी बात बना सके तो उस देशमें उनका व्यापार खूब फैलेगा। अंगरेज सारी दुनियाको एक बड़ा भारी बाजार बनाना चाहते हैं जहां उनका माल बिका करे। वे इसमें यशस्वी नहीं हो सकते, पर दोष उनके सिर न होगा। वे अपना मतलब साधनेके लिये कोई बात उठा न रखेंगे।

इस प्रकार हम लोगोंने ऐसी अवस्था उत्पन्न की कि हिन्दुस्थानमें कंपनीका दखल हो गया। इसलिये यह नहीं कह सकते कि अंगरेजोंने हिन्दुस्थान लिया बल्कि यह कह सकते हैं कि हिन्दुस्थान हम लोगोंने अंगरेजोंके हवाले किया।

पाठक—अब कृपाकर यह बतलाइये कि ये लोग हिन्दुस्थानको अपने हाथमें कैसे रखे हुए हैं?

संपादक—जिन कारणोंने उन्हें हिन्दुस्थान दिलाया उन्हीं कारणोंसे वे उसे अपने हाथमें रखे हुए हैं। कुछ अंगरेज कहा करते हैं कि हम लोगोंने शस्त्रके बलसे हिन्दुस्थान लिया और शस्त्रके बलसेही उसे अपने अधीन रखा है। ये दोनों बातें गलत हैं। हिन्दुस्थानको आधीन रखनेमें शस्त्र कुछ काम नहीं दे सकता। हमी लोगोंने यहां अंग्रेजोंको रखा है। कहते हैं कि नेपोलियन अंगरेजोंको दूकानदारोंकी कौम कहा करता था। अंगरेजोंका यह वर्णन यथार्थ है। वे किसी भी देशपर जो राज करते हैं वह अपने व्यापारके लिये करते हैं। उनकी जलसेना और स्थलसेना उस व्यापारकी रक्षा करनेके लिये है। ट्रान्सवालमें जब व्यापारका कोई सिलसिला न बैठा तब ग्लैडस्टनने यह पता लगाया कि ट्रान्सवालको अपने अधीन रखना अंग्रेजोंके लिये उचित नहीं है। जब रोजगार चमकता हुआ देखा, तब उन्हींके विरुद्ध भयानक लड़ाई छिड़ गयी। मि० चैंबरलेनने यह पता ढूंढ निकाला कि ट्रान्सवालमें अंगरेजोंका आधिपत्य है। यह लिखा है कि एकबार किसीने स्वर्गीय प्रेसिडेंट क्रूगरसे पूछा कि चन्द्रलोकमें सोना

खान है या नहीं ? उन्होंने जवाब दिया, सोनेकी खान तो यहां न होगी क्योंकि यदि होती तो अंगरेज जरूर उसे अपने अधिकारमें कर लेते। बहुतसे प्रश्न इस बातको याद रखनेसे ही हल हो जाते हैं कि पैसाही उनका ईश्वर है। इससे यह सिद्ध होता है कि अंगरेजोंको हिन्दुस्थानमें हम लोगोंने अपने नीच स्वार्थके लिये रखा है। हम उनका व्यापार पसंद करते हैं। उनके तौर तरीके हमें भाते हैं और इसलिये वे जो चाहते हैं हमसे ले लेते हैं। इसके लिये उन्हें दोष लगाना उनके प्रभुत्वको स्थायी करना है। हम लोग आपसमें लड़ झगड़ कर उनका बल और भी बढ़ाते हैं। ये बातें यदि आप सच समझते हों तो इनसे यह सिद्ध होता है कि अंगरेज हिन्दुस्तानमें व्यापारके निमित्त आये। व्यापारके लिये ही वे यहां रहते हैं। और इस काममें हम उनकी मदद करते हैं। उनके हर्वे हथियार या गोलाबारूद कुछ भी काम नहीं दे सकती। इस संबंधमें मैं आपको याद दिलाता हूं कि जापानमें इस समय जो झंडा फहर रहा है वह जापानका नहीं, ग्रेट ब्रिटेनका है। जापानके साथ अंगरेजोंकी व्यापारसंबंधी एक सन्धि है, और आप देखियेगा, यदि अंगरेज अपनी बात बना सके तो उस देशमें उनका व्यापार खूब फैलेगा। अंगरेज सारी दुनियाको एक बड़ा भारी बाजार बनाया चाहते हैं जहां उनका माल बिका करे। वे इसमें यशस्वी नहीं हो सकते, पर दोष उनके सिर न होगा। वे अपना मतलब साधनेके लिये कोई बात उठा न रखेंगे।

आठवां परिच्छेद

हिन्दुस्थानकी अवस्था

पाठक—अव मैं समझा कि हिन्दुस्थानपर अंगरेजोंका अधिकार क्यों है? अव मैं अपने देशकी वर्तमान अवस्थापर आपके विचार जानना चाहता हूं।

सम्पादक—अवस्था वहुत खराव है। सोचनेसे आंखें डवडवा आती हैं और कंठ रूंध जाता है। हृदयमें क्या चलविचल हो रही है सो मैं ही जानता हूं। मेरा यह दृढ़ विचार है कि हिन्दुस्थान रौंदा जा रहा है, अंगरेजोंके पैरोंतले नहीं वल्कि आधुनिक सभ्यतासे। यह डाइन हिन्दुस्थानको खाये डालती है। अव भी वचनेका अवसर है, पर एक एक दिन जो वीत रहा है, इस कामको कठिनही करता जाता है। धर्म मुझे प्यारा है, और मेरी पहली शिकायत यही है कि हिन्दुस्थान धर्मभ्रष्ट हो रहा है। धर्मसे मेरा हिन्दु, मुसलमान या पारसी धर्मसे मतलव नहीं है, वल्कि उस धर्मसे है जो इन सव धर्मोंका आधार है। हम लोग विमुख हो रहे हैं।

कैसे?

—हम लोगोंपर यह इलजाम लगाया गया है कि लोग सुस्त हो, और यूरोपियन उद्योगी और पराक्रमी हैं।

इस अभियोगको हम लोगोंने सब मान लिया है, और अपनी अवस्था सुधारना (?) चाहते हैं। आर्यधर्म, इस्लाम, पारसी-ईसाई तथा अन्य धर्म यह शिक्षा देते हैं कि मनुष्यको सांसारिक बातों-से उदासीन और पारमार्थिक बातोंमें व्यवसायी होना चाहिये, अपनी सांसारिक महत्वाकांक्षाको मर्यादित करना चाहिये, और अपनी धार्मिक अभिलाषाओंका अनन्त विस्तार करना चाहिये। हमारा सब उद्योग धर्ममूलक तथा धर्मप्रीत्यर्थ होना चाहिये।

पाठक—आप तो धार्मिक अकर्मण्यताको बढ़ावा देरहे हैं। ऐसी ऐसी बातें करके बहुतसे ठगोंने दुनियाको ठगा है।

सम्पादक—आप धर्मपर अनुचित आक्षेप कर रहे हैं। सभी धर्मोंके साथ कुछ न कुछ पाखंड रहता ही है। जहां रौशनी होगी वहां छाया भी जरूर होगी। मैं यह कहता हूं कि सांसारिक ठग पारमार्थिक ठगोंसे अधिक नुकसान करते हैं। सभ्यताका जो पाखंड मैं तुम्हें दिखलाना चाहता हूं वह धर्ममें नहीं है।

पाठक—आप यह कैसे कहते हैं? धर्मके नामपर हिन्दु और मुसलमान एक दूसरेसे लड़े। इसीके लिये ईसाई ईसाई लड़ गये, हजारों निरपराध मनुष्य मारे गये, हजारों जलाये गये और हजारोंको धर्मके नामपर तरह तरहकी तकलीफ दी गयी। यह तो किसी सभ्यतासे कहीं अधिक बुरा है।

सम्पादक—मैं यह कहता हूं कि ये दुःख उन दुःखोंके सामने कुछ नहीं हैं जो सभ्यताके कारण भोगने पड़ते हैं। हर एक आदमी इस बातको समझता है कि जिस क्रूरताका आपने वर्णन किया

है वह किसी धर्मका अङ्ग नहीं है, यद्यपि धर्मके नामपर उसकी लीला हुई है। ये क्रूर कार्य तबतक होते ही रहेंगे जबतक संसारमें मूर्ख और जाहिल रहेंगे। पर सभ्यताकी आगमें जल कर भस्म होनेवालोंका कोई ठिकाना नहीं है। यह ऐसा ज़हर है कि ज़हरका काम करता हुआ भी लोगोंको यह अच्छा मालूम होता है। लोग धर्मच्युत हो जाते हैं और वास्तवमें संसारसे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। सभ्यता वह चूहा है जो दिलासा देता हुआ जीवनके बन्धनोंको काटता जाता है। जब इसका पूरा असर ध्यानमें आ जायगा तब यह दिखायी देगा कि धार्म्मिक अन्ध विश्वास आधुनिक सभ्यताके मुकाबले कुछ विशेष हानिकारक नहीं हैं। धार्म्मिक अन्धविश्वास बनाये रखनेके लिये मैं नहीं कह रहा हूं। उनका नाश ही करना होगा, पर धर्मकी उपेक्षा करके हम लोग यह काम नहीं कर सकते। धर्मका रहस्य समझ कर और उसके अनुसार अपने जीवनको बनाकर ही हम लोग इस कामको कर सकते हैं।

पाठक—तब आप यह कहेंगे कि ब्रिटेनने हिन्दुस्थानमें शान्ति स्थापित नहीं की?

संपादक—आप भले ही शान्ति देखते हों, मुझे तो कहीं नहीं दिखायी देती।

पाठक—इस देशमें ठगों, पिण्डारियों और भीलोंने जो उधम उत्पात मचाया था उसको आप कुछ भी नहीं समझते?

संपादक—जरा आप सोचिये तो आपको मालूम होगा कि

यह भय कोई बड़ी भारी बात नहीं थी। यदि इसमें कुछ जान होती तो अंगरेजोंका राज होनेसे पहले ही और लोग मर गये होते। यह भी समझ लीजिये कि यह शान्ति भी नाममात्रकी है, क्योंकि इसके द्वारा हमलोग चूसे गये हैं और कायर बन गये हैं। यह न समझिये कि अङ्गरेजोंने पिंडारियों और भीलोंका स्वभाव ही बदल दिया। इसलिये और दूसरे लोग आकर पिंडारियोंसे हमारी रक्षा करें और हमें नपुंसक बनावें इससे तो पिंडारियोंकी जबर्दस्ती ही अच्छी थी। नामर्दकी तरह दूसरेको शरणमें जानेके बदले मैं तो भीलके तीरका शिकार होकर मरना अधिक पसन्द करता हूं। हिंदुस्तानकी रक्षा करनेवाला जब कोई न था, तब हिन्दुस्थान वीर था। मेकालेने यह कह कर कि हिन्दुस्तानी कायर होते हैं अपनी मूर्खता ही प्रकट की है। हिन्दुस्तानी कायर तो नहीं हैं। जिस देशमें पर्वती साहसी लोग रहते हैं, जहां भेड़िये और शेर विचरा करते हैं वहां यदि कायर रहें तो उनके मरघट पहुंचाये जानेमें देर ही क्या लगे? हमारे यहांके कृषिक्षेत्र भी आपने कभी देखे हैं? मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि हमारे किसान आज भी निर्भय होकर अपने खेतोंमें सोया करते हैं, जहां वे सोते हैं वहां अंगरेजोंको पड़े रहनेका साहस न होगा, हम आपको भी न होगा। शक्ति निर्भयतामें ही होती है, मांस और रक्तकी वृद्धिमें नहीं। जो लोग स्वराज्य चाहते हैं उन्हें मैं यह स्मरण करा देना चाहता हूं कि चाहे उन्हें आप भील, पिण्डारी या आसामी अथवा ठग कहिये, वे हैं हमारे ही देशभाई। उनको

जीतना हमारा आपका काम है। जबतक हमलोग अपने ही भाइयोंसे डरते हैं तबतक हम इस योग्य नहीं हैं कि अपने लक्ष्यके समीप पहुंचें।

नवां परिच्छेद

रेलवे

पाठक—हिन्दुस्थानमें शान्ति है यह सोचकर मनको जो एक समाधान होता था उससे मुझे आपने वंचित कर दिया।

संपादक—मैंने अभी केवल धार्मिक पहलूको लेकर अपने विचार प्रकट किये हैं, जब मैं हिन्दुस्थानकी दरिद्रताके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करूंगा तब तो आप मुझे शायद तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेंगे, क्योंकि अबतक हम और आप जिस बातको हिन्दुस्थानके फायदेकी समझते थे उसे अब मैं वैसा नहीं समझता।

पाठक—वह कौनसी बात है?

संपादक—रेलवे, वकील और डाकूरोंने देशको इतना निर्द्धन बना दिया है कि यदि हमलोग समय रहते न जागेंगे तो हम लोगोंका सत्यानास होगा।

पाठक—अब तो सचमुच ही यह कहना पड़ेगा कि हमारे आपके विचार कभी मिल नहीं सकते। आप तो उन्हीं कामोंको रहे हैं जिन्हें हमलोग अबतक अच्छा समझते थे।

संपादक—धैर्य-धारणका अभ्यास करनेकी आवश्यकता

है। सभ्यताकी बुराइयोंके असली माने समझनेमें आपको कठिनाई होगी। डाक्टर लोग यह बतलाते हैं कि कोई क्षयरोगी हो और मरनेको हो तो भी वह जीता रह सकता है। क्षयरोगका कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं है—यह रोग रोगीके चेहरेपर एक ऐसी रंगत भी ले आता है जिससे यह मालूम हो कि मरीजका हाल अच्छा है। सभ्यता एक ऐसा ही रोग है और इसलिये हमें बड़ी सावधानी रखनी होगी।

पाठक—अच्छा, रेलवेके बारेमें कहिये।

संपादक—यह तो प्रत्यक्ष ही है कि यदि रेलवे न होती तो अंगरेजोंका अधिकार इतना दृढ़ न होता। रेलवेसे ही ब्यूबानिक प्लेग फैला है। रेलवे न होती तो आप लोग इधरसे उधर न जाते आते। ये लोग प्लेगके कीड़े लिये फिरते हैं। पहले लोग स्वभावतः ही दूर दूर रहते थे। बारंबार दुर्भिक्ष पड़नेका कारण भी रेलवे ही है। क्योंकि माल ढो ले जानेके सुभीतेके कारण लोग अपना अनाज बेच देते हैं और अनाज ऐसे बाजारोंमें पहुंचता है जहां सबसे अधिक दाम मिले। लोग लापरवाह हो जाते हैं और दुर्भिक्षका प्रकोप बढ़ता जाता है। रेलवेके कारण मनुष्यकी प्रकृतिके विकार प्रबल होते हैं। दुष्ट लोग अपने बुरे विचार बड़ी फुरतीसे काममें ले आते हैं। हिन्दुस्थानके पवित्र तीर्थ अपवित्र हो गये हैं। प्राचीन कालमें लोग बड़ी कठिनाईसे इन स्थानोंतक पहुंचते थे। इसलिये प्रायः सच्चे भक्त ही यात्रा करते थे। अब, लुच्चे लफंगे भी यहां आकर दुराचार फैलाते हैं।

पाठक—आपने एक तर्फा इज़हार किया। लुच्चे लफंगे जा सकते हैं तो अच्छे आदमी भी तो जा सकते हैं, वे रेलवेसे पूरा लाभ क्यों न उठावें ?

संपादक—अच्छी यात्रा कछुएकी चालसे होती है—इस लिये रेलवेसे इसका कुछ सम्बन्ध ही नहीं रहता। जो लोग भला करना चाहते हैं वे स्वार्थी नहीं होते, उन्हें जल्दी नहीं पड़ी रहती, वे जानते हैं कि लोगोंमें सुविचारोंका संचार करनेमें बहुत समय लगता है। पर बुराईके पर होते हैं। मकान बनानेके लिये समय लगता है, गिरानेके लिये नहीं। इस तरह रेलवे बुराई फैलानेका ही काम दे सकती है। रेलवेसे दुर्भिक्ष फैलता है या नहीं, यह बहसतलब बात हो सकती है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उससे बुराई जरूर फैलती है।

पाठक—यह सब जो हो, रेलवेसे चाहे जो जो हानि होती हो, एक बातसे उन सबका बदला निकल आता है, वह यह कि रेलवेकी बदौलत ही आज हम भारतवर्षमें राष्ट्रीयताकी नवीन ज्योति जगमाती हुई देख रहे हैं।

संपादक—यह बात ठीक नहीं है। अंगरेजोंने हम लोगोंको यह पढ़ा दिया है कि तुम लोग पहले एक राष्ट्र नहीं थे, और एक राष्ट्र बननेके लिये अभी कई शताब्दियां लगेंगी। यह बिलकुल निर्मूल बात है। अंगरेजोंके यहां आनेसे पहले हम लोग राष्ट्र थे। हम लोग एक भावसे भावापन्न थे। हम लोगोंकी सहन एक थी। हम लोग एक राष्ट्र थे इसीसे वे एक

राज्य स्थापित कर सकें। बादको उन्होंने हम लोगोंके कई विभाग कर दिये।

पाठक—यह बात विस्तारके साथ कहिये।

संपादक—मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि हम लोग चूंकि एक राष्ट्र थे, हम लोगोंमें किसी प्रकारकी विभिन्नता नहीं थी, पर यह बात माननी होगी कि हमारे नेता पैदल या बैल-गाड़ियोंमें बैठकर समस्त भारतवर्षकी यात्रा करते थे। वे एक दूसरेकी भाषा सीखते थे और उनमें किसी तरहका अलगाव नहीं था। आप क्या समझते हैं कि हमारे जिन दूरदर्शी पूर्वपुरुषोंने दक्षिणमें सेतुबन्ध रामेश्वर, उत्तरमें हरद्वार और आग्नेय दिशामें जगन्नाथमें मठस्थापना की उनका इसमें क्या मतलब था? यह तो आप मानेंगे कि वे मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे कि ईश्वरकी पूजा घर बैठे भी हो सकती है। वे इस बातकी शिक्षा देते थे कि, 'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा'। पर उन्होंने यह देखा कि हिन्दुस्थान निसर्गतः एक अविभक्त देश है। इसलिये उन्होंने यह उचित समझा कि हिन्दुस्थान एक राष्ट्र होना चाहिये। यह सोचकर, उन्होंने हिन्दुस्थानके भिन्न भिन्न भागोंमें तीर्थोंकी स्थापना की। और लोगोंमें राष्ट्रीयताकी वह ज्योति इस ढंगसे जगा दी कि संसारके और किसी देशमें उसका नमूना देखनेमें नहीं आता। दो हिन्दुस्थानियोंमें जितनी एकता है उतनी दो अंगरेजोंमें नहीं है। केवल हम आप और ऐसे लोग जो अपनेको सभ्य और श्रेष्ठ समझते हैं, अपने आपको कई राष्ट्रोंमें विभक्त

पाते हैं। रेलवे जबसे चली है तबसे भेदभाव माने जाने लगे हैं और अब आप यह भलेही कहें कि रेलवेके द्वारा हमने इन भेदोंको दूर करना आरंभ किया है, जैसे कोई अफीमची अफीमके अच्छी होनेकी दलील यह पेश करे कि अफीम खानेसेही हमें अफीमकी बुराई मालूम हुई। रेलवेके सम्बन्धमें मैं जो कुछ कह गया उसपर आप ध्यानसे विचार कीजिये।

पाठक—मैं अवश्य विचार करूंगा, पर, एक प्रश्न यहीं मेरे सामने उपस्थित हुआ है। आपने मुसलमानोंके पूर्वके हिन्दुस्थानका वर्णन किया, पर आज हमारे यहां मुसलमान, पारसी और ईसाई भी हैं। इन सबका एक राष्ट्र कैसे हो सकता है? हिन्दू और मुसलमान पुराने शत्रु हैं। हमारे यहांकी कहावतोंसे ही यह बात सिद्ध होती है। मुसलमान पश्चिमाभिमुख हो ईश्वरकी उपासना करते हैं और हिन्दू पूर्वाभिमुख होकर। मुसलमान हिन्दुओंको बुतपरस्त समझते हैं। हिन्दू अहिंसा धर्म मानते हैं और मुसलमान नहीं मानते, इस तरह पद पदपर हमलोगोंमें भेद दिखायी देते हैं। तब हिन्दुस्थान एक राष्ट्र कैसे हो सकता है?

दसवां परिच्छेद

हिन्दू और मुसलमान

सम्पादक—आपका अन्तिम प्रश्न बड़ा विकट है, पर ध्यानसे विचार करनेपर यह अनायास हल हो सकता है। यह प्रश्न इस कारणसे होता है कि रेलवे, वकील और डाक्टर मौजूद हैं; ये मौजूद न होते तो प्रश्न भी न उठता। अब वकीलों और डाक्टरोंके बारेमें विचार करें। रेलवेके बारेमें विचार कर चुके। यहां मैं यह कह देना चाहता हूं कि मनुष्यका कुछ ऐसा विचित्र स्वभाव है कि जहांतक वह अपने हाथ पैर हिला सकता है, हिलाता रहता है, इसलिये उसकी गति मर्यादित करनेकी आवश्यकता होती है। यदि रेलवे तथा मनुष्यको पागल बनानेवाले ऐसेही अन्य सुभीतोंके कारण हमलोग इधर उधर दौड़धूप न करते होते तो बहुतसी गड़बड़ आपही रुक जाती। हमलोगोंने आपही अपनी कठिनाइयोंको निर्माण किया है। ईश्वरने मनुष्यका शरीर इस ढंगसे बनाया है कि मनुष्यके चलने फिरनेकी इच्छा मर्यादित रहे। पर मनुष्यने इस मर्यादाको लांघनेका उपाय ढूंढ निकाला। ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि दी जिसमें वह अपने सृष्टिकर्त्ताको पहचाने। मनुष्य उस बुद्धिका ऐसा दुरुपयोग करने लगा कि जिसमें वह ईश्वरको भूल जाय। मनुष्यकी शरीर-रचना इस प्रकारकी है कि

उसकी सेवाका क्षेत्र अपने अड़ोस पड़ोसके दायरेसे अधिक बड़ा नहीं हो सकता, पर अहंमन्यताके नशेमें मनुष्य यह सोचता है कि हम संसारके प्रत्येक व्यक्तिकी सेवा कर सकते हैं। जो बात हो नहीं सकती, उसके पीछे पड़कर भिन्न भिन्न स्वभावों और धर्मोंके सम्पर्कमें आकर घबरा उठता है। इस विचारपद्धतिके अनुसार आपको यह मालूम होगा कि रेलवे सत्यानासका एक बड़ा भारी साधन है। इसके कारण मनुष्य अपने ईश्वरसे और भी विमुख हो गया है।

पाठक—पर मैं अपने प्रश्नका उत्तर आपसे सुननेके लिये अधीर हो उठा हूं। मुसलमान धर्मका प्रवेश यहां हो जानेसे क्या राष्ट्र खंडित नहीं हुआ है?

संपादक—भिन्न भिन्न धर्मोंके लोगोंके एकत्र होनेसे ही हिन्दुस्थानकी एक राष्ट्रीयता नष्ट नहीं हो सकती। विदेशियोंके आनेसे राष्ट्र नष्ट हो जाय यह कोई जरूरी बात नहीं है क्योंकि विदेशी भी राष्ट्रमें समा जाते हैं। कोई देश तभी राष्ट्र हो सकता है जब उसमें यह गुण हो। उस देशमें यह शक्ति होनी चाहिये कि बाहरवालोंको भी अपना ले, अपने अन्दर मिला ले। हिन्दुस्थान सदासे ऐसा ही देश है। सच पूछिये तो जितने जीव हैं उतने ही धर्म हैं, पर जो लोग राष्ट्रीयताकी ज्योतिका अनुभव करते हैं वे एक दूसरेके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं किया करते। जो करते हैं, वे एक राष्ट्र होने योग्य नहीं हैं। यदि हिन्दुओंका यह ख्याल हो कि हिन्दुस्थानमें केवल हिन्दू ही रहें तो यह उनका

स्वप्न है। हिन्दू, पारसी, मुसलमान, ईसाई अर्थात् जिन जिन लोगोंने हिन्दुस्थानको अपना देश माना है वे सब भाई भाई हैं और उन्हें केवल अपनाही स्वार्थ साधना हो तो भी उन्हें एका करके ही रहना होगा। संसारके किसी भागमें एक धर्म और एक राष्ट्रीयता समानार्थक नहीं हैं, और हिन्दुस्थानमें भी ऐसा कभी न था।

पाठक—पर हिन्दू मुसलमानोंमें जो स्वभावसिद्ध शत्रुता है उसपर आपका क्या कहना है ?

संपादक—ये शब्द हम दोनोंके दुश्मनने गढ़े हैं। हिन्दू और मुसलमान जब आपसमें लड़ते थे तब एक दूसरेको शानमें वे ऐसी बातें कहते थे। पर अब आपसमें लड़ना उन्होंने मुद्दतसे छोड़ दिया है। तब स्वभावसिद्ध शत्रुता कैसी ? हां, यह भी याद रखिये कि अंगरेज़ोंका यहां अधिकार होनेके बादसे ही यह लड़ाई नहीं बन्द हुई है। मुसलमान राजाओंके समयमें हिन्दू सुखी और समृद्ध थे, और हिन्दू राजाओंके समयमें मुसलमान भी खुशहाल थे। दोनोंने यह समझ लिया था कि आपसमें लड़ना आपही अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारना है; रही धर्मकी बात, सो क्या हिन्दू और क्या मुसलमान कोई भी तलवारसे डर कर धर्मान्तर न करेगा। इसलिये दोनोंने शान्तिके साथही रहना निश्चय किया। अंगरेज आये तब झगड़े फिर शुरू हुए।

आपने जिन शब्दोंका प्रयोग किया है वे उस समयके गढ़े हुए हैं जब दोनों आपसमें लड़ते थे ; अब उनका हवाला देना

जान बूझ कर घाटा उठाना है। क्या यह बात नहीं है कि कितने ही हिन्दू और मुसलमान एक ही कुलके वंशज हैं और उनकी नसोंमें एकही पूर्वपुरुषका रक्त प्रवाहित हो रहा है? क्या धर्मान्तर करनेसे कोई किसीका शत्रु हो जाता है? क्या मुसलमानोंके खुदा कोई दूसरे हैं और हिन्दुओंके ईश्वर कोई और? धर्मभेद क्या है, मार्गभेद है पर सभी मार्ग एकही स्थानपर पहुंचाते हैं। यदि हम आप एकही स्थानको जा रहे हैं तो थोड़ी देर हम दूसरे रास्तेसे चले तो इसमें क्या बिगड़ता है? झगड़ेका कारण ही क्या है?

शैवों और वैष्णवोंको भी परस्परके विरुद्ध उभारनेवाली कहावतें मौजूद हैं पर कोई यह नहीं कहता कि ये दोनों एक ही राष्ट्रके अंग नहीं हैं। वैदिक धर्मको लोग जैन धर्मसे भिन्न मानते हैं, पर दोनों अलग अलग राष्ट्र नहीं हैं। बात यह है कि हम लोग हो गये हैं गुलाम और इसलिये आपसमें झगड़ते हैं और उसका निपटेरा करानेके लिये तीसरे आदमीके पास जाते हैं। जाहिलोंमें हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। सत्यज्ञानका जितना ही प्रचार होगा उतनी ही यह समझ पक्की होगी कि धर्म भिन्न हुआ तो क्या किसीसे लड़नेकी कोई ज़रूरत नहीं है।

पाठक—अब मैं गोरक्षाके बारेमें आपके विचार सुनना हूं।

संपादक—मैं स्वयं गौको मानता हूं अर्थात् गौको मैं प्रेम आदरकी दृष्टिसे देखता हूं। गौ हिन्दुस्थानकी रक्षा करने-

वाली है, क्योंकि यह देश कृषिप्रधान है और इसका सारा दार-मदार गोवंशपर ही है। सैकड़ों प्रकारसे गौ एक अत्यन्त उपयोगी प्राणी है। हमारे मुसलमान भाई भी इस बातको मानेंगे।

पर जैसे मैं गौका आदर करता हूं, वैसेही अपने भाइयोंका भी करता हूं। मनुष्य भी वैसाही उपयोगी है जैसी कि गौ, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। इसलिये क्या एक गायको बचानेके लिये मेरा यह कर्तव्य है कि मैं एक मुसलमानसे लड़ूं या उसकी हत्या करूं? ऐसा करनेसे मैं गौका भी शत्रु हुआ और मुसलमानका भी। इसलिये गौकी रक्षा करनेका एकही मार्ग मैं जानता हूं—यही कि मैं अपने मुसलमान भाईके पास जा कर देशके नामपर गौकी रक्षा करनेमें मेरा साथ देनेके लिये उससे प्रार्थना करूं। यदि वह न माने तो मैं गौको जाने दूंगा क्योंकि बात मेरे काबूके बाहरकी है। यदि गौकी दुर्गति आंखोंसे न देखी गयी तो उसको बचानेके लिये मैं अपनी जान दे दूं, पर अपने भाईकी जान न लूं। हमारे धर्मका यही सिद्धान्त है।

जब मनुष्य किसी बातकी ज़िद पकड़ लेता है तो मामला बड़ा टेढ़ा हो जाता है। मैं अपनी तरफ खींचूंगा और मेरा मुसलमान भाई अपनी तरफ। मैं अपनेको कुछ लगाऊं मुसलमान भी अपनी शान दिखायेगा। यदि मैं उसके अपना सिर झुकाऊं, तो वह भी सिर झुकायेगा और

झुकावे तो भी मेरा सिर झुकाना अन्याय न समझा जायगा। हिन्दुओंकी ज़िद्दके साथही गोहत्या बढ़ी है। मेरी रायमें, गोरक्षिणी सभाएं क्या हैं, गोहत्याकारिणी सभाएं हैं। जब हमलोग यही भूल गये कि गौओंकी रक्षा कैसे करनी होती है, तभी मैं समझता हूं कि इन सभाओंकी आवश्यकता पड़ी।

अपनाही सगा भाई गाय मारनेपर उतारू हो जाय तो क्या करना चाहिये? क्या उसे मार डालना चाहिये, या उसके पैरोंपर गिरकर उससे आर्ज़ू करनी चाहिये? यदि आप दूसरा मार्ग पसन्द करते हैं तो मुसलमान भाईके साथ भी वैसा ही करना चाहिये।

जब हिन्दू स्वयंही गौओंके साथ वेरहमी करते हैं तो उन्हें कौन बचाता है? जब हिन्दूही स्वयं गोवंशसे काम लेनेके लिये बेरहमीसे लाठीकी मार मारते हैं तब कौन पूछता है? पर इससे हमारे एक राष्ट्र बने रहनेमें कोई बाधा नहीं पड़ी है।

अन्तमें मैं यह पूछता हूं कि यदि यह बात सच है कि हिन्दू अहिंसा धर्म मानते हैं और मुसलमान नहीं मानते तो अहिंसा धर्मको माननेवालोंका क्या कर्तव्य है? शास्त्रमें यह कहीं लिखा नहीं है कि अहिंसा धर्मको माननेवाला अपना भाईकी हत्या करे। उसका मार्ग सीधा है। एक जीवको बचानेके लिये दूसरेकी हिंसा करनेका कुछ काम नहीं है। वह सिर्फ मुंहसे जो कुछ कहना हो, कहे—इतनाही भर उसका कर्त्तव्य है।

[illegible] अहिंसा धर्मको मानता है? असल

बात तो यह है कि एक भी मनुष्य इस धर्मका पालन नहीं करता, हम सबसे जीवहिंसा होती ही है। हमलोग अहिंसा धर्मका पालन करनेवाले इसलिये कहे जाते हैं कि हमलोग चाहते हैं कि किसी प्रकारकी जीवहिंसा करनेके भारसे हम मुक्त हों। बहुतसे हिन्दु मांस खाते हैं अर्थात् प्रत्यक्ष जीवहिंसा न करके भी वे जीवहिंसक हैं। इसलिये यह कहना बिलकुल व्यर्थ है कि हिन्दु अहिंसाके माननेवाले और मुसलमान न माननेवाले होनेके कारण दोनों एक साथ भाई भाईकी तरह नहीं रह सकते।

असलमें स्वार्थी और झूठे धर्मगुरुओंने ये बातें हमारे दिमागमें भर दी हैं। अंगरेजोंने उसपर तुर्रा चढ़ा दिया है। इन्हें इतिहास लिखनेकी आदत पड़ी हुई है, सब देशोंके आचार-विचारोंका हमें ज्ञान है ऐसा ये लोग दिखलाते हैं। ईश्वरने हमें बहुत संकुचित मानसिक शक्ति दी है, पर ईश्वरकी बुद्धिका कार्यभार भी इन्होंने छीन लिया है और ये लोग तरह तरहके तमाशे किया करते हैं। अपने किये हुए अनुसन्धानोंकी भूरि भूरि प्रशंसा कर हमलोगोंपर ऐसा जादू डालते हैं कि उन बातोंको हमलोग सच समझने लगते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनके पैरोंपर जा गिर पड़ते हैं।

जो लोग कुरान शरीफका वास्तविक अर्थ समझना चाहते हैं वे कुरान पढ़कर जान सकते हैं कि उसकी सैकड़ों आयतें ऐसी हैं जिन्हें हिन्दू मानते हैं;—श्रीमद्भगवद्गीतामें ऐसे श्लोक हैं जिन्हें मुसलमान शिरोधार्य समझते हैं। क्या यह कोई जरूरी

बात है कि कुरानमें कुछ ऐसी आयतें हों कि जिन्हें हम समझ न सकें या जिन्हें हम पसन्द न करें तो इसलिये मुसलमानोंका तिरस्कार करें? ताली कभी एक हाथसे नहीं बजती। यदि हम मुसलमानोंसे लड़ना नहीं चाहते तो मुसलमान भी लड़ाई छेड़नेमें असमर्थ ही रहेंगे, उसी प्रकार हम भी लड़ाई छेड़ नहीं सकते यदि मुसलमान लड़ना न चाहें। हवापर वार करनेवाले हाथका जोड़ आपही उखड़ जाता है। यदि हर कोई अपने धर्मका रहस्य समझ कर उसका पालन करेगा और झूठे गुरुओंके फेरमें न पड़ेगा तो झगड़ेका कोई कारणही न रह जायगा।

पाठक—पर अंगरेज कब ऐसा होने देंगे कि हिन्दू मुसलमान एक होकर रहें?

संपादक—यह प्रश्न आपकी कायरताका सूचक है। इससे हमारे मनका ओछापन प्रकट होता है। यदि भाई भाई मिलकर रहना चाहते हैं तो कोई तीसरा आदमी बीचमें आकर उन्हें कैसे अलग कर सकता है? यदि वे दुष्टोंकी बातोंमें आते हैं तो हम उन्हें मूर्ख कहेंगे। उसी प्रकार अंगरेज यदि हम हिन्दू मुसलमानों-को एक दूसरेसे अलग कर सकें तो अंगरेजोंके बदले हमें अपनी ही मूर्खतापर रोना होगा। मट्टीका घड़ा यदि कच्चा हो तो एक या दो ढेले मारनेसे ही वह चूर हो जायगा। घड़ेकी रक्षा तभी हो सकती है जब वह अच्छी तरह भट्टीमें पकाया जाय। मतलब यह कि हम लोगोंको अपने दिल पक्के करने होंगे। तब कोई भी संकट हमें छिन्न-भिन्न न कर सकेगा। हिन्दू, इस कामको अधिक

अच्छी रीतिसे कर सकते हैं। उनकी संख्या अधिक है, वे अपनेको लगाते हैं कि हम लोग अधिक शिक्षित हैं, इसलिये मुसलमानोंके साथ उनका जो भाईचारा है उसपर कोई आक्रमण करे तो हिन्दू उससे उसकी रक्षा करनेमें अधिक समर्थ हैं।

इन दो जातियोंमें परस्पर अविश्वास है। इसलिये मुसलमान लार्ड मोर्लेसे कुछ रियायतें चाहते हैं। हिन्दू क्यों इसका विरोध करें? यदि हिन्दू विरोध करना छोड़ दें तो अंगरेजोंका उस ओर ध्यान जायगा, मुसलमान धीरे धीरे हिन्दुओंपर विश्वास करने लगेंगे, और भाईचारा बढ़ेगा। अपने झगड़ोंको अंगरेजोंके पास ले आते हमें लज्जा आनी चाहिये। हर आदमी यह समझ सकता है कि मुसलमानोंके साथ रियायतें होनेकी बात हिन्दू स्वीकार करें तो इसमें हिन्दुओंकी कुछ भी हानि नहीं है। जो कोई दूसरेके दिलमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता है, संसारमें कभी उसकी हानि नहीं होती।

मैं यह नहीं कहता कि हिन्दू और मुसलमान कभी आपसमें न लड़ेंगे। भाई भाई एक साथ रहते हुए लड़ते ही हैं। कभी कभी हम लोग एक दूसरेके प्राणोंके भी गाहक होंगे। यह बात आवश्यक तो नहीं है, पर सब मनुष्य शान्त प्रकृतिके नहीं होते। जब लोग भड़क जाते हैं तब मूर्खताकी कितनीही बातें कर डालते हैं। इन सब बातोंको निबाहना होगा। पर जब हमलोग आपसमें लड़ें तब हम लोग निश्चयही वकील खड़े करके अपने मामले अंगरेजी या और किसी अदालतमें न ले जायंगे। दो आदमी

लड़ें, दोनोंके सिर फूटे, या एकका फूटा। तीसरा आदमी वीचमें आ कर उन्हें न्याय कैसे बांट देगा? जो लड़ते हैं वे हानि उठानेके लिये भी तैयार रहते हैं।

ग्यारहवां परिच्छेद

वकील

पाठक—आप वतलाते हैं कि जब दो आदमी आपसमें लड़ें तो अदालतमें न जायं। यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

संपादक—आश्चर्यकी बात कहिये या कुछ कहिये, यह सत्य है। और आपका प्रश्न हमें वकीलों और डाक्टरोंके समीप ले आया है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि वकीलोंने हिन्दुस्थानको गुलाम वनाया, हिन्दू मुसलमानोंके झगड़े इन्होंने ही वढ़ाये, और इन्होंने ही अंगरेजी राजको कायम किया है।

पाठक—ये इलजाम लगाना तो सहज है पर इन्हें साबित कठिन होगा। यदि वकील न होते तो स्वतंत्रताका मार्ग दिखलाता? गरीबोंकी रक्षा कौन करता? न्याय कौन ? उदाहरणार्थ स्व० श्रीयुत मनमोहन घोषने कितने ही ओरसे विना कुछ लिये पैरवी कर दी। आप इतनी प्रशंसा कर चुके हैं उसका जीवन वकीलोंकी वदौलत है। ऐसे सम्मान्य मनुष्य-

समाजको नाम धरना न्यायको अन्याय कहना है। आप वकीलोंकी बदनामी करके मुद्रणस्वातंत्र्यका दुरुपयोग कर रहे हैं।

संपादक—मैं भी पहले आपकी ही तरह समझता था। मैं आपके दिमागमें यह बात नहीं भरना चाहता कि वकीलोंने कभी कोई अच्छा काम किया ही नहीं। मैं श्रीयुत घोषके नामका सम्मान करता हूं। यह सच है कि उन्होंने गरीबोंकी मदद की। कांगरेस वकीलोंकी भी कुछ ऋणी है यह बात मंजूर है। वकील भी तो मनुष्य ही हैं, और हर मनुष्यमें कोई न कोई अच्छा गुण रहता ही है। जब वकीलोंके किये उपकारके दृष्टान्त दिये जायंगे तब यह मालूम होगा कि उनका किया उपकार वकीलकी हैसियतसे नहीं, बल्कि मनुष्यकी हैसियतसे हुआ था। मैं आपको केवल यही दिखलाना चाहता हूं कि वकालतका पेशा दुश्चरित्रताकी शिक्षा देता है, इसमें बड़े बड़े मोहपाश हैं जिनसे शायदही कोई बचता हो।

मान लीजिये, हिन्दू मुसलमानोंमें झगड़ा हुआ। एक साधारण मनुष्य उन्हें यही सलाह देगा कि जो हुआ सो हुआ, अब सब भूल जाओ, दोनों हाथोंसेही ताली बजती है, और आगे अब आपसमें न झगड़ो। फरीकैन वकीलके पास गये। वकीलका कर्त्तव्य है कि अपने मुवक्किलोंका पक्ष करें और उनका दावा जिधरसे मजबूत हो ऐसी बातें ढूंढ निकालें जिन बातोंको बेचारे मुवक्किल जानते भी नहीं। यदि वकील ऐसा न करें तो वे अपने पेशेको गिरानेवाले समझे जायं। वकील इस तरह

झगड़ोंको दबानेके बदले उन्हें और बढ़ाया करते हैं। फिर यह भी बात है कि लोग इस पेशेको दूसरोंकी भलाई करनेके मतलब से नहीं इख्तियार किया करते बल्कि अमीर होनेके लिये करते हैं। अमीर होनेका यह एक अच्छा साधन है और इस साधनकी सफलता झगड़ोंके बढ़ानेमें ही है। मैं अपने अनुभवसे जानता हूं कि जब लोग आपसमें झगड़ते हैं तब इन्हें खुशी होती है। वकालत-के छोटे दूकानदार तो झगड़े पैदा किया करते हैं। ये लोग जोंक-की तरह गरीबोंका खून चूसते हैं। वकील ऐसे मनुष्य होते हैं जिन्हें कुछ काम नहीं रहता। अकर्मण्य मनुष्य ऐशके ख्यालसे ऐसे कामोंमें पड़ते हैं। यह बात बिलकुल सच है। और कोई दलील दलील नहीं, बहाना है। वकीलोंने यह बात ढूंढ निकाली है कि हमारा पेशा सम्मान्य है। ये लोग वैसेही कानून बनाते हैं जैसे अपने स्तुतिस्तोत्र। वे ही इस बातका निर्णय करते हैं कि मुवक्किलोंसे कितनी फीस ली जायगी और ये ऐसे नखरे करते हैं कि गरीब आदमी इन्हें स्वर्गलोकके प्राणी समझते हैं।

इन्हें साधारण मजदूरोंसे अधिक मिहनताना किस लिये चाहिये? इनकी आवश्यकताएं अधिक क्यों होती हैं? मजदूरोंसे अधिक देशकी भलाई ये लोग क्या करते हैं? जो भलाई करते हैं क्या वे ज्यादा मिहनतानेके हकदार हैं? और यदि धनके लिये इन्होंने देशका कोई काम किया हो तो [illegible] गिनती भलाईमें कैसे होगी?

हिन्दू [illegible] मालूम है

वे जानते हैं कि, ये झगड़े प्रायः वकीलोंकी विचवईसे हुए हैं। इनके कारण जितने ही कुटुम्बोंका सत्यानास हुआ है, इन्होंने कितने भाइयोंको एक दूसरेका दुश्मन बनाया है। जो जागीरें या रियासतें वकीलोंके हाथ पड़ गयीं, उनपर कर्ज लद गया। कितनोंका तो सर्वस्व चला गया। ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

पर सबसे बड़ी हानि इन्होंने जो की है वह यह है कि इन्होंने अंगरेजी राजका बन्धन दृढ़ कर दिया है। क्या आप समझते हैं कि बिना अदालतोंके, अंगरेजोंका राज यहां रह सकता है? यह समझना कि अदालतें लोगोंके फायदेके लिये बनायी गयी हैं, बिलकुल गलत है। जो लोग अपना दखल जमा रखना चाहते हैं वे अदालतोंसे ही यह काम लेते हैं। यदि लोग अपने झगड़े आपसमेंही तै कर लिया करें तो उनपर हुकूमत चलानेके लिये तीसरे आदमीकी जरूरतही क्या रहेगी? जब लोग आपसमें झगड़े निपटानेके लिये लड़ने या अपने रिश्तेदारोंसे फैसला कराने लगे तब सचमुचही यह उनकी कायरताका लक्षण था। जब वे अदालतोंकी शरण लेने लगे तब तो वे और भी कायर और नामर्द हुए। लड़ कर झगड़े निपटाते थे तब वे निःसन्देह जंगली थे। हम और आप झगड़ें और अपना झगड़ा निपटानेके लिये एक तीसरे आदमीको बुलावें तो क्या यह कुछ कम जंगली-पनेकी बात है? तीसरा आदमी आकर जो फैसला करता है वह सदा ठीकही नहीं हुआ करता। हम लोग अपनी मूर्खताके कारण

यह मान लेते हैं कि तीसरा आदमी, हमसे रुपया लेकर, बदलेमें न्याय देता है।

मुख्य बात यह है कि वकीलोंके बिना न अदालतें स्थापित हो सकतीं न चल सकतीं, और अदालतोंके बिना अंगरेज राज्यही न कर सकते। यदि केवल अंगरेज ही जज होते, अंगरेजही वकील होते,अंगरेजही पुलिस होते तो अंगरेजोंपरही वे राज कर सकते। हिन्दुस्थानी जजों और हिन्दुस्थानी वकीलोंके बिना अंगरेजोंका काम न चलता। पहले पहल वकील किस तरहसे बनाये गये और उनकी किस तरह खातिर की गयी यह बात आपको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। तब आप भी मेरी तरहसेही इस पेशेसे घृणा करेंगे। यदि वकील अपना पेशा छोड़ दें और अपने पेशेको एक वेश्याके पेशेकी नज़रसे देखें तो एक दिनमें हिन्दुस्थानकी काया पलट जाय। हम लोगोंपर जो यह आक्षेप किया जाता है कि हम लोग अदावत और अदालतके शौकीन हैं सो इन्हींकी बदौलत। वकीलोंके सम्बन्धमें मैंने कहा वही जजोंके बारेमें भी समझिये ; ये वकीलोंके बड़े भाई हैं—दोनों सिद्ध साधक हैं।

बारहवां परिच्छेद

डाक्टर

पाठक—वकीलोंकी बात तो मैं समझ गया, उन्होंने यदि कुछ भलाई भी की हो तो वह अकस्मात् रूपसे ही हुई है। मैं समझता हूं, वह पेशा ही घृणित है। पर इसी कोटिमें आप डाक्टरोंको भी घसीटते हैं, यह कैसी बात है?

सम्पादक—मैं जो विचार आपके सामने प्रकट कर रहा हूं वे मैंने दूसरोंसे लिये हैं—मेरे अपने नहीं हैं। वकीलों और डाक्टरोंके बारेमें पाश्चात्य ग्रन्थकारोंने बड़े कठोर शब्दोंका व्यवहार किया है। एक ग्रन्थकारने इस सारी आधुनिक व्यवस्थाको विष-वृक्षकी उपमा दी है। इसकी शाखायें मुफ्तखोरोंके पेशे हैं, इन्हींमें वकालत और डाक्टरी भी शामिल है और इसके धड़पर सत्य धर्मका भाला खड़ा किया गया है। अनीतिमत्ता या दुश्चरित्रता इस वृक्षकी जड़ है। अर्थात् ये विचार मेरे मनसे नहीं निकले हैं, अनेकोंके अनुभवका यह फल है। किसी समय मैं भी डाक्टरीका पेशा बहुत पसन्द करता था। देशके लिये मैं डाक्टर होनेकी इच्छा करता था। अब मेरी राय पलट गयी है। अब मैं समझा कि दवाका काम करनेवाले (वैद्य, हकीम) हमारे समाजमें प्रतिष्ठित क्यों न समझे गये।

अंगरेजोंने सचमुच ही हम लोगोंको
पेशेसे खूब काम लिया है। अंगरेज डाकृ
याई राज्योंमें राजनीतिक स्वार्थ साधने
काम लिया है।

डाकृरोंने हम लोगोंका सत्यानास किर
यह सोचता हूं कि अच्छे अच्छे डाकृरोंसे
सोचिये—डाकृरका काम क्या है? शरी
यथार्थमें पूछिये तो यह भी नहीं। उनका
रोग उत्पन्न हों उन्हें दूर करना। ये रोग
हम लोगोंकी उपेक्षा या अनियमितताले
पड़ाजगी होगी, डाकृरके पास जाइये,
होगा, फिर आप खाये जाइये और
पहलेही यदि वैद्यसे गोली न लेते
और फिर कभी ज्यादा न खाते
अनियमिततामें मदद हुई।
अरूर हुआ, पर मन का
खाये जानेसे मनपर

किसी क

अंसपताल क्या हैं पाप चढ़ानेवाली संस्थाएं हैं। इनके कारण मनुष्य अपने शरीरको उतनी परवा नहीं करते और इससे दुश्चरित्रता बढ़ती है। यूरोपियन डाकृर तो सबसे खराब होते हैं। मनुष्य-शरीरकी रक्षाके लिये ये लोग प्रति वर्ष सहस्रों पशुओंका संहार करते हैं। ये लोग चीरफाड़ करते हैं। किसी धर्ममें यह विहित नहीं है। सब यही कहते हैं कि हमारे शरीरके लिये इतनी जानें लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

ये डाकृर हमारी धार्म्मिक कल्पनाओंको चोट पहुंचाते हैं। इनकी अनेक दवाओंमें या तो पशुओंकी चरबी या शराब होती है, इन दोनों चीजोंको हिन्दू मुसलमान हराम समझते हैं। हम लोग अपने आपको सभ्य लगाते हैं, धार्मिक विधि निषेधोंको कुसंस्कार कह कर उड़ा देते हैं और जो मनमें आता है, कर डालते हैं। डाकृर हमें ऐसा करनेके लिये उत्तेजित करते हैं और इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ है कि हम संयमसे हाथ धोकर नामर्द बने हुए हैं। ऐसी अवस्थामें हम लोग देशसेवा करनेके योग्य नहीं हैं। यूरोपके वैद्यकका अभ्यास करना दासत्वके पंकमें और भी धंसना है।

यह भी सोचनेकी बात है कि हम लोग डाकृरी पेशा किस लिये इख्तियार करते हैं। मनुष्य जातिकी सेवा करनेके लिये तो कोई यह काम नहीं उठाता। हम लोग डाकृर इसलिये होते हैं कि धन मिले और इज्ज़त मिले। मैं यह दिखला चुका हूं कि इस पेशेसे मनुष्य जातिका कुछ उपकार नहीं होता, बल्कि अप-

अंगरेजोंने सचमुच ही हम लोगोंको दवा रखनेमें डाकृरी पेशेसे खूब काम लिया है। अंगरेज डाकृरोंने कितने ही एशियाई राज्योंमें राजनीतिक स्वार्थ साधनेके लिये इस पेशेसे काम लिया है।

डाकृरोंने हम लोगोंका सत्यानास किया है। कभी कभी मैं यह सोचता हूं कि अच्छे अच्छे डाकृरोंसे तो नीमहकीम अच्छे। सोचिये—डाकृरका काम क्या है? शरीरकी रक्षा करना और यथार्थमें पूछिये तो यह भी नहीं। उनका काम है, शरीरमें जो रोग उत्पन्न हों उन्हें दूर करना। ये रोग उत्पन्न कैसे होते हैं? हम लोगोंकी उपेक्षा या अनियमिततासे। अधिक खा जाइये, बदहजमी होगी, डाकृरके पास जाइये, दवा देगा, उससे आराम होगा, फिर आप खाये जाइये और डाकृरसे दवा लिये जाइये। पहलेही यदि वैद्यसे गोली न लेते तो जो भोग था वह भोग चुकते और फिर कभी ज्यादा न खाते। पर बीचमें डाकृरके आ जानेसे अनियमिततामें मदद हुई। दवासे शरीरको कुछ आराम तो जरूर हुआ, पर मन कमजोर हो गया। इस प्रकार दवा बराबर खाये जानेसे मनपर फिर काबू ही नहीं रहता।

किसी कुकर्ममें फंसे, उससे रोग हुआ, डाकृरने अच्छा किया ; परिणाम यह हुआ कि कुकर्म और बढ़ा। डाकृर यदि बीचमें न आता तो प्रकृति अपना काम आप कर लेती, और अपने मनपर अपना कब्जा होता, बुराईसे छुटकारा होता और मनुष्य सुखी होता।

अंसपताल क्या हैं पाप बढ़ानेवाली संस्थाएं हैं। इनके कारण मनुष्य अपने शरीरको उतनी परवा नहीं करते और इससे दुश्च-रित्रता बढ़ती है। यूरोपियन डाकृर तो सबसे खराब होते हैं। मनुष्य-शरीरकी रक्षाके लिये ये लोग प्रति वर्ष सहस्रों पशुओंका संहार करते हैं। ये लोग चीरफाड़ करते हैं। किसी धर्ममें यह विहित नहीं है। सब यही कहते हैं कि हमारे शरीरके लिये इतनी जानें लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

ये डाकृर हमारी धार्मिक कल्पनाओंको चोट पहुंचाते हैं। इनकी अनेक दवाओंमें या तो पशुओंकी चरबी या शराब होती है; इन दोनों चीजोंको हिन्दू मुसलमान हराम समझते हैं। हम लोग अपने आपको सभ्य लगाते हैं, धार्मिक विधि निषेधोंको कुसंस्कार कह कर उड़ा देते हैं और जो मनमें आता है, कर डालते हैं। डाकृर हमें ऐसा करनेके लिये उत्तेजित करते हैं और इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ है कि हम संयमसे हाथ धोकर नामर्द बने हुए हैं। ऐसी अवस्थामें हम लोग देशसेवा करनेके योग्य नहीं हैं। यूरोपके वैद्यकका अभ्यास करना दासत्वके पंकमें और भी धंसना है।

यह भी सोचनेकी बात है कि हम लोग डाकृरी पेशा किस लिये इख्तियार करते हैं। मनुष्य जातिकी सेवा करनेके लिये तो कोई यह काम नहीं उठाता। हम लोग डाकृर इसलिये होते हैं कि धन मिले और इज़्ज़त मिले। मैं यह दिखला चुका हूं कि इस पेशेसे मनुष्य जातिका कुछ उपकार नहीं होता, बल्कि अप-

कार ही होता है। डाक्टर अपने ज्ञानका प्रदर्शन करते हैं और मनमानी फीस लेते हैं। इनकी दवाओंकी लागत तो कुछ पैसे ही होती है और दाम रुपयोंमें गिनाते हैं। साधारण लोग मूर्खताके कारण और रोगसे मुक्त होनेकी आशासे ठगे जाते हैं। तब क्या इन उपकार करनेका दम भरनेवाले डाक्टरोंसे वे नीमहकीम ही अच्छे नहीं हैं जिन्हें लोग कमसे कम पहचान तो लेते हैं?

तेरहवां परिच्छेद

वास्तविक सभ्यता क्या है?

पाठक—आपने रेलवे, वकील, डाक्टर सबको तुच्छ बतलाया। इससे यह भी मालूम हो गया कि आप यंत्रोंको (Machinery) भी त्याग देंगे। तब सभ्यता क्या है?

सम्पादक—इस प्रश्नका उत्तर कुछ कठिन नहीं है। मेरा यह विश्वास है कि हिन्दुस्थानमें जो सभ्यता विकसित हुई है, संसारकी कोई सभ्यता उससे बाजी नहीं मार सकती। हमारे पूर्वज जो बीज बो गये हैं उसकी बराबरी कोई चीज नहीं कर सकती। रोम चला गया, यूनानकी भी वही गति हुई, फैरोआका बल चूर्ण हुआ, जापान पश्चिमके रंगमें रंग गया, चीनके बारेमें कुछ कही नहीं सकते, पर हिन्दुस्थान अभीतक किसी न किसी तरह अपनी नींवको सुदृढ़ बनाये हुए है। यूरोपके लोग उस यूनान या

रोमके प्राचीन ग्रन्थोंसे अपने पाठ पढ़ते हैं जिनका प्राचीन गौरव नष्ट हो चुका है। उनसे शिक्षा लेनेका उद्योग करते हुए यूरोपियन यह समझते हैं कि यूनान और रोमसे जो भूलें हुईं वे हमसे न होंगी। उनकी इस कदर शोचनीय अवस्था है। इन सब बातोंके बीचमें हिन्दुस्थान अचल खड़ा है, और यही उसका गौरव है। हिन्दुस्थानपर यह इल्जाम लगाया जाता है कि हिन्दुस्थानके लोग इतने असभ्य, अज्ञ और मूर्ख हैं कि लाख सिखानेपर भी वे कोई परिवर्तन नहीं करते। यह अभियोग व्यर्थ ही लगाया जाता है। जिसको अनुभवकी निहाईपर पीट कर खरा पाया है उसे हम लोग कैसे बदल सकते हैं? बहुतसे लोग हिन्दुस्थानको जबर्दस्ती सलाह देते हैं और हिन्दुस्थान टससे मस नहीं होता। यही उसका सौन्दर्य है; यही हमारी आशा-नौकाका लंगर है। सभ्यता चालचलनके उस ढंगको कहते हैं जो मनुष्यको उसका कर्तव्यपथ दिखलाता है। कर्तव्यपालन और सच्चरित्रता दोनों बातें एकही हैं। सच्चरित्र होनेके लिये मन और मनोविकारोंको अपने दास बनाना पड़ता है। ऐसा करनेसे हम अपने आपको जान लेते हैं। सभ्यताका अर्थही सौजन्य या नेक चालचलन है।

सभ्यताकी यह व्याख्या यदि ठीक हो तो अनेक ग्रन्थकारोंने जैसा कहा है, हिन्दुस्थानको किसीसे कुछ सीखना नहीं है, और यह बहुत अच्छा है। हम समझते हैं कि मन एक चंचल चिड़िया है, उसे जितनाही अधिक मिलता है उतनी ही अधिक उसकी इच्छा बढ़ती है और उसका असन्तोष कभी दूर नहीं

होता। जितनाही हम मनोविकारोंके पीछे चलें उतनेही वे वेकावू हो जाते हैं। इसलिये हमारे पूर्वजोंने हमारे विषयभोगकी मर्यादा बांध दी। उन्होंने देखा कि सुख एक मानसिक अवस्था है। कोई मनुष्य धनी होनेसे ही सुखी नहीं होता और अनेक निर्धन भी सुखी दिखायी देते हैं। करोड़ों मनुष्य सदा गरीव ही रहेंगे। इन सब वातोंको सोचकर हमारे पूर्वजोंने हमें विलासिता और आमोद प्रमोदसे दूर रहनेकी शिक्षा दी। हजारों वर्ष पहले हम लोग जिस हलसे जमीन जोतते थे उसी हलसे अब भी जोतते हैं। पहले जमानेमें जैसी झोपड़ियां थीं वैसी ही अब भी हैं, और हमारे यहांकी शिक्षापद्धति भो वैसी ही है जैसी पहले थी। जीवनको निःसार बनानेवाली प्रतिस्पर्धा हमारे यहां थी ही नहीं। सब अपने अपने धन्धे और व्यापारमें लगे रहते और बंधी हुई वृत्ति पाते थे। यह वात नहीं है कि हम लोग यन्त्रोंका आविष्कार करना नहीं जानते थे, पर हमारे पूर्वजोंने यह देखा कि यदि इन वातोंके पीछे हम लोग पड़े तो हम लोग गुलाम वन जायंगे और हमारी नीतिमत्ताका धागा ही टूट जायगा। इस लिये वहुत सोच समझ कर उन्होंने यह निश्चय किया कि हम लोगोंको वही करना चाहिये जो हम अपने हाथ पैरसे कर सकें। उन्होंने यह देखा कि अपने हाथ पैरका ठीक उपयोग होनेमें ही [illegible]ार्थ सुख और स्वास्थ्य है। उन्होंने यह भी सोचा कि वड़े वड़े [illegible] होना एक जाल विछाना है और नाहकका वोझ सिरपर [illegible] है, वहां लोगोंको सुख नहीं होगा, चोर और डाकू वहां

अपने गरोह बनावेंगे, बदफैली और बुराईकी खूब तरक्की होगी और गरीबोंको अमीर लूटेंगे। इस लिये वे छोटे छोटे ग्रामोंसे ही सन्तुष्ट थे। उन्होंने यह जाना कि राजे और उनके हथियार नीतिके हथियारके सामने कुछ नहीं हैं, और इसलिये वे पृथ्वीके राजामहाराजोंको ऋषिमुनियों और फकीरोंके सामने कुछ नहीं समझते थे। जिस राष्ट्रका ऐसा संगठन हो वही दूसरोंसे शिक्षा लेनेके बदले उन्हें सिखा सकता है। इस देशमें भी अदालतें, वकील और डाक्टर थे, पर सब एक सीमाके अन्दर बंधे थे। सब जानते थे कि ये पेशे कोई खास इज़्ज़त नहीं रखते; और ये वकील तथा वैद्य भी लोगोंको लूटते नहीं थे; ये लोग जनताके मालिक नहीं बल्कि आश्रित समझे जाते थे। अदालतोंमें न्याय भी होता था। साधारण नियम तो यह था कि कोई अदालत-को शरण लेता ही न था। लोगोंको अदालतकी ओर झुकाकर ले जानेवाले दलाल भी नहीं थे। यह बुराई भी राजधानियोंमें और उनके आसपास ही दिखायी देती थी। साधारण लोग तो स्वतन्त्र रह कर अपनी गृहस्थीमें लगे रहते थे। वे वास्तवमें स्वराज्य सुख भोगते थे।

और जहां अभी यह दुष्ट आधुनिक सभ्यता नहीं पहुंची है, वहां हिन्दुस्तानका पहले जैसा ही हाल है। वहांके लोग आप-की नयी रोशनीके नूर देख कर हंस पड़ेंगे। अङ्गरेज उनपर राज नहीं करते और न आप कभी कर सकेंगे। जिनकी बात हम कर रहे हैं उन्हें हम लोग नहीं जानते और न वे हम लोगोंको

चौदहवां परिच्छेद

हिन्दुस्थान स्वतंत्र कैसे हो सकता है ?

पाठक—सभ्यताके सम्बन्धमें मैं आपके विचारोंको महत्वपूर्ण समझता हूं। मुझे उनपर विचार करना होगा। सब बातें एकदम बुद्धिमें नहीं समा सकतीं। अच्छा, अपने इन विचारोंके अनुसार आप हिन्दुस्थानको स्वतंत्र करनेका क्या उपाय बतलाते हैं ?

संपादक—मैं यह आशा नहीं करता कि मेरे विचार एकदम ही कोई मान लेगा। मेरा कर्त्तव्य इतनाही है कि मैं अपने विचारोंको आप जैसे पाठकोंके सामने रखूं। शेष कार्य काल स्वयं कर लेगा। हिन्दुस्थानको स्वतंत्र करनेकी सब बातोंका परीक्षण हम आप कर चुके पर यह काम अप्रत्यक्ष रूपसे हुआ है; अब प्रत्यक्ष रूपसे करें। यह बात सबको मालूम है कि किसी रोगका कारणही हटा देनेसे वह रोग हट जाता है। उसी प्रकार यदि हिन्दुस्थानकी गुलामीका कारण हटा दें तो हिन्दुस्थान स्वतंत्र हो सकता है।

पाठक—यदि हिन्दुस्थानकी सभ्यता आप बतलाते हैं कि सबसे अच्छी है तो भला यह तो बतलाइये कि हिन्दुस्थान फिर पराधीन क्यों हुआ ?

संपादक—यह सभ्यता निश्चयही सर्वोत्तम है पर यह ध्यानमें

रखना होगा कि सभी सभ्यताओंकी परीक्षा हुआ करती है। जो सभ्यता स्थायी होती है वह उस परीक्षासे उत्तीर्ण होती है। भारतसन्तानोंने अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें भूल की इसलिये उनकी सभ्यता संकटापन्न हुई है। पर इसकी शक्ति इस बातमें देखी जायगी कि विदेशी सभ्यताकी चोट चपेटसे वह अपनी रक्षा किस प्रकार करता है। पर समस्त हिन्दुस्थानको इस सभ्यताका स्पर्श नहीं हुआ है। केवल वेही लोग गुलाम हुए हैं जिनपर पश्चिमी सभ्यताका प्रभाव पड़ा है। हमलोग अपने सड़े हुए दिमागसे दुनियाको मापते हैं। हमलोग यदि गुलाम हैं तो समझते हैं कि दुनिया गुलाम है। हम लोग बड़ी बुरी हालतमें हैं इसलिये समझते हैं कि समस्त हिन्दुस्थान उसी हालतमें है। पर सच बात यह नहीं है, हम लोग खुद गुलाम हैं और अपनी गुलामी हिन्दुस्थानपर आरोपित करते हैं। परंतु यदि हम उक्त बातको ध्यानमें रखें तो यह बात समझमें आ जायगी कि यदि हम लोग स्वतंत्र हो गये तो समझ लीजिये कि हिन्दुस्थान स्वतंत्र है। स्वराज्यकी यही व्याख्या है। हम लोग अपना शासन आप करना सीखें तो स्वराज्य ही है। इसलिये स्वराज्य हमारे हाथमें है। इस स्वराज्यको स्वप्न मत समझिये। हाथपर हाथ रख कर बैठ रहनेकी बात नहीं है। जिस स्वराज्यका चित्र मैं अपने और आपके सामने खींचना चाहता हूं वह ऐसा है कि जहां एकबार उसे आपने समझ और बूझ लिया तहां हम अपने जीवनभर औरोंको वैसाही करनेकी शिक्षा देते रहेंगे। पर इस

जानते हैं। मैं, आप और आप जैसोंको मातृभूमिके प्रेमके नाम-पर यह सलाह देता हूं कि देशके उस भीतरी प्रदेशमें जाइये जहांकी भूमि अभी रेलोंसे अपवित्र नहीं हुई है और छ महीने रहकर आइये ; तब आपमें देशभक्तिका संचार हो सकेगा और आप स्वराज्यकी चर्चा कर सकेंगे।

आपने अब समझा होगा कि मैं वास्तविक सभ्यता किसे कहता हूं। जो लोग इस स्थितिको बदलना चाहते हैं वे देशके शत्रु और महापापी हैं।

पाठक—आपने हिन्दुस्थानका जैसा वर्णन किया है वैसा ही यदि हिन्दुस्थान हो तो सब ठीक ही है, पर वह भी हिन्दुस्थान ही है जहां सैकड़ों बालविधवाएं हैं, जहां दो दो सालके बच्चोंका ब्याह हो जाता है, जहां बारह २ वर्षकी कन्याएं माता और गृहिणीके पदपर बिराजती हैं, जहां एक स्त्रीके अनेक पति होते हैं, जहां नियोगकी प्रथा है, जहां धर्मके नामपर बालिकाएं वेश्याओं-की गति प्राप्त करती हैं, और जहां धर्मके नामपर भेड़ बकरे मारे जाते हैं! क्या इन्हें भी आप उसी सभ्यताके लक्षण मानते हैं।

सम्पादक—आप गलती करते हैं। जो दोष आपने दिखलाये हैं वे दोष ही हैं। उन्हें कोई प्राचीन सभ्यताके लक्षण नहीं सम-झता। प्राचीन सभ्यताके होते हुए भी ये दोष वर्त्तमान हैं। उन्हें दूर करनेका प्रयत्न सदासे होता आया है और आगे भी होगा। हम लोगोंमें जो नवीन वायु संचारित हुई है उसका उपयोग इन बुराइयोंके दूर करनेमें किया जा सकता है

परन्तु आधुनिक सभ्यताके जो लक्षण मैंने बतलाये उन्हें उस सभ्यताके माननेवाले सभ्यताके ही लक्षण समझते हैं। भारतीय सभ्यताके माननेवाले उसका वर्णन वैसा ही करते हैं जैसा मैंने किया है। संसारके किसी हिस्सेमें और किसी सभ्यताके रहते मनुष्य कभी पूर्णताको प्राप्त नहीं हुआ। भारतीय सभ्यताकी प्रवृत्ति नीतिमत्ता (सच्चरित्रता) बढ़ानेकी ओर है और पश्चिमी सभ्यताकी प्रवृत्ति दुश्चरित्रता फैलानेकी ओर। पश्चिमी सभ्यता ईश्वरहीन है और भारतीय सभ्यताकी नींव ही ईश्वर है। यह बात जान कर और उसपर विश्वास रखकर प्रत्येक भारतभक्तका यह कर्तव्य है कि जैसे एक नन्हा बालक अपनी माताकी गोदसे अलग नहीं होता वैसे ही तुम भी अपनी प्राचीन आर्य सभ्यताकी गोदसे अलग न हो।

चौदहवां परिच्छेद

हिन्दुस्थान स्वतंत्र कैसे हो सकता है ?

पाठक—सभ्यताके सम्बन्धमें मैं आपके विचारोंको महत्वपूर्ण समझता हूं। मुझे उनपर विचार करना होगा। सब बातें एकदम बुद्धिमें नहीं समा सकतीं। अच्छा, अपने इन विचारोंके अनुसार आप हिन्दुस्थानको स्वतंत्र करनेका क्या उपाय बतलाते हैं ?

संपादक—मैं यह आशा नहीं करता कि मेरे विचार एकदम ही कोई मान लेगा। मेरा कर्त्तव्य इतनाही है कि मैं अपने विचारोंको आप जैसे पाठकोंके सामने रखूं। शेष कार्य काल स्वयं कर लेगा। हिन्दुस्थानको स्वतंत्र करनेकी सब बातोंका परीक्षण हम आप कर चुके पर यह काम अप्रत्यक्ष रूपसे हुआ है ; अब प्रत्यक्ष रूपसे करें। यह बात सबको मालूम है कि किसी रोगका कारणही हटा देनेसे वह रोग हट जाता है। उसी प्रकार यदि हिन्दुस्थानकी गुलामीका कारण हटा दें तो हिन्दुस्थान स्वतंत्र हो सकता है।

पाठक—यदि हिन्दुस्थानकी सभ्यता आप बतलाते हैं कि सबसे अच्छी है तो भला यह तो बतलाइये कि हिन्दुस्थान फिर पराधीन क्यों हुआ ?

संपादक—यह सभ्यता निश्चयही सर्वोत्तम है पर यह ध्यानमें

रखना होगा कि सभी सभ्यताओंकी परीक्षा हुआ करती है। जो सभ्यता स्थायी होती है वह उस परीक्षासे उत्तीर्ण होती है। भारतसन्तानोंने अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें भूल की इसलिये उनकी सभ्यता संकटापन्न हुई है। पर इसकी शक्ति इस बातमें देखी जायगी कि विदेशी सभ्यताकी चोट चपेटसे वह अपनी रक्षा किस प्रकार करता है। पर समस्त हिन्दुस्थानको इस सभ्यताका स्पर्श नहीं हुआ है। केवल वेही लोग गुलाम हुए हैं जिनपर पश्चिमी सभ्यताका प्रभाव पड़ा है। हमलोग अपने सड़े हुए दिमागसे दुनियाको मापते हैं। हमलोग यदि गुलाम हैं तो समझते हैं कि दुनिया गुलाम है। हम लोग बड़ी बुरी हालतमें हैं इसलिये समझते हैं कि समस्त हिन्दुस्थान उसी हालतमें है। पर सच बात यह नहीं है, हम लोग खुद गुलाम हैं और अपनी गुलामी हिन्दुस्थानपर आरोपित करते हैं। परंतु यदि हम उक्त बातको ध्यानमें रखें तो यह बात समझमें आ जायगी कि यदि हम लोग स्वतंत्र हो गये तो समझ लीजिये कि हिन्दुस्थान स्वतंत्र है। स्वराज्यकी यही व्याख्या है। हम लोग अपना शासन आप करना सीखें तो स्वराज्य ही है। इसलिये स्वराज्य हमारे हाथमें है। इस स्वराज्यको स्वप्न मत समझिये। हाथपर हाथ रख कर बैठ रहनेकी बात नहीं है। जिस स्वराज्यका चित्र मैं आपके और आपके सामने खींचना चाहता हूं वह ऐसा है कि जहां एकबार उसे आपने समझ और बूझ लिया तहां हम अपने जीवनभर औरोंको वैसाही करनेकी शिक्षा देते रहेंगे। पर इस

स्वराज्यका अनुभव हर किसीको स्वयं कर लेना होगा। जो मनुष्य स्वयं डूब रहा है वह दूसरोंको बचा नहीं सकता। स्वयं गुलाम होकर हम दूसरोंको स्वतंत्र करनेका दम भरें यह केवल दांभिकपन है। अब आपकी समझमें यह बात आ गयी होगी कि अंगरेजोंको निकाल बाहर करनेकी ज़रूरत नहीं है। यदि अंगरेज हिन्दुस्थानी बन जायं तो उन्हें हम अपनेमें शामिल कर ले सकते हैं। यदि वे अपनी सभ्यता लिये यहां रहना चाहते हैं तो उनके लिये यहां स्थान खाली नहीं है। यह काम हमारा है कि ऐसी हालत यहांकी हो जाय।

पाठक—यह तो कभी संभव नहीं हैं कि अंगरेज हिन्दुस्थानी बन जायं।

संपादक—यह कहना और यह कहना कि अंगरेजोंमें मनुष्यत्व ही नहीं है बराबर है, और इसका कोई सवाल भी नहीं है कि वे हिन्दुस्थानी बनेंगे या नहीं। हम अपना घर सुधार लें तो जो उसमें रहने योग्य हैं वे रहेंगे और बाकी खुद ही वहांसे चलते बनेंगे। ये तो हमारे आपके अनुभवकी बातें हैं।

पाठक—पर इतिहासमें इसका कोई हवाला नहीं है।

संपादक—यह समझना कि जो इतिहासमें नहीं हुआ वह कभी न होगा, मनुष्यके गौरवको कुछ न समझना है। जो हो, हमें वही करना चाहिये जो अपनी बुद्धिमें ठीक जंचे। सब देशोंकी अवस्था समान नहीं है। हिन्दुस्थानकी अवस्था कुछ और है। उसकी शक्ति असीम है। इसलिये दूसरे देशोंके

इतिहासमें हवाला ढूंढनेका कुछ काम नहीं है। मैं यह बात दिखला चुका हूं कि जिस चपेटमें आकर और सभ्यताएं मिट चुकीं उस चपेटसे भारतीय सभ्यता इतने धक्के खाकर भी अब-तक बची हुई है।

पाठक—यह बात मैं नहीं समझा। मुझे तो यह दिखायी देता है कि हम लोगोंको शस्त्रके बलसे अंगरेजोंको अर्धचन्द्र देना पड़ेगा। जबतक ये लोग हमारे देशमें हैं तबतक हम लोगोंको आराम नहीं मिल सकता। हमारे एक कवि कह गये हैं कि, "पराधीन सपने हु सुख नाहीं"। अंगरेजोंके कारण हमलोग दिन दिन दुर्बल होते जा रहे हैं। हमारा गौरव नष्ट हो गया, हमारे लोग भयभीत दिखायी देते हैं। अंगरेज इस देशके शत्रु हैं, उन्हें हर उपायसे निकाल बाहर करना होगा।

संपादक—आपने तो अबतककी सब बातें घबराहटमें आकर भुला दीं। अंगरेजोंको हम ही तो ले आये और हम ही रखे हुए हैं। यह बात आप क्यों भूले जा रहे हैं कि उनकी सभ्यता हम लोगोंने ग्रहण की इसीसे वे लोग यहां रह सके हैं? उनके प्रति आपका जो द्वेष है वह उनसे हटाकर उनकी सभ्यता-पर ले आइये। पर मान लो कि अंगरेजोंसे लड़कर उन्हें यहांसे भगाना है तो यह कैसे होगा?

पाठक—वैसेही जैसे इटालीने आस्ट्रियाको भगाया। मैजिनी और गैरीबाल्डी जो कुछ कर सके वह हम लोग भी कर सकते हैं। यह तो आप नहीं कह सकते वे महापुरुष न थे।

पंद्रहवां परिच्छेद

इटाली और हिन्दुस्थान

संपादक—इटालीका दृष्टान्त आपने दिया यह अच्छा किया। मैजिनी बड़ा और नेक आदमी था; गैरीवाल्डी बड़ा योद्धा था। दोनोही पूज्य हैं; उनके चरित्रसे हमलोग बहुत कुछ सीख सकते हैं। परंतु इटालीकी दशा हिन्दुस्थानकी दशासे भिन्न थी। सबसे पहले, मैजिनी और गैरिवाल्डीके बीचका भेद भी ध्यान देने योग्य है। मैजिनी इटालीके बारेमें जो चाहता था वह हुआ नहीं, और अबतक भी नहीं हुआ है। मैजिनीने "मनुष्यके कर्त्तव्य" वाले प्रबन्धमें यह निर्द्देश किया है कि हर एक मनुष्यको यह जानना चाहिये कि आत्मसंयम कैसे करना होता। इटालीमें यह बात नहीं हुई। गैरिवाल्डी मैजिनीके इस सहमत न था। गैरिवाल्डीने शस्त्र दिया और प्रत्येक ने उसे ग्रहण किया। इटाली और आस्ट्रियाकी सभ्यता एकही थी; वे इस बातमें भाई भाई थे। "घूसेका जवाब घूसा" वाला मामला था। गैरिवाल्डी केवल इतना ही चाहता था कि इटाली आस्ट्रियाकी अधीनतासे स्वतंत्र हो। कैवूरकी कुटिलताने इटालीके इतिहासके उस अंशको कलंकित किया है। और इसका परिणाम क्या हुआ? यदि आप यह समझते हों

कि इटालीमें इटालियनोंका राज है इसलिये इटालियन सुखी हैं तो आप अन्धकारमें हैं। मैज़िनीने अच्छी तरहसे दिखला दिया है कि इटाली स्वतंत्र नहीं हुआ। इटालीकी इस स्वाधीनताको विक्टर एमान्युअल कुछ समझता था और मैज़िनी कुछ और। एमान्युअल, कैवूर और गैरिबाल्डी भी इटालीसे मतलब इटालीके बादशाह और उनके मुसाहिब ही समझते थे। मैज़िनी इटालीका अर्थ यह समझता था कि समस्त इटालियन अर्थात् इटालीके किसान। एमान्युअल उसका सिर्फ एक नौकर था। मैज़िनीका इटाली अभी दासत्वमें ही है। इटालीका जिसे राष्ट्रीय संग्राम कहते हैं वह दो प्रतिस्पर्धी राजाओंके बीच चौसरका खेल था जिसमें इटालीके लोग सिर्फ दांवपर रखे गये थे। वहांके श्रमजीवी लोग अब भी दुखी हैं। इसलिये वे लोग खूनखराबी करते हैं, बागी हो जाते हैं, और सदा गदर होनेका डर बना रहता है। इटालीसे आस्ट्रियाकी फौज निकल गयी, उससे इटालीका क्या लाभ हुआ? नाममात्रका लाभ हुआ। जिन अधिकारोंके लिये युद्ध किया गया था वे अधिकार रैयतको अबतक नहीं मिले हैं। सर्वसाधारणकी वही दुर्दशा है जो पहले थी। मुझे विश्वास है, हिन्दुस्थानमें आप ऐसी हालत होने देना न चाहेंगे। मैं समझता हूं कि आप यह चाहते हैं कि हिन्दुस्थानके करोड़ों आदमी सुखी हों, यह नहीं कि राजकी बागडोर आपके हाथमें हो। यदि यह बात है तो एक ही बात सोचनेकी है—करोड़ों आदमी आत्मशासनको कैसे प्राप्त करेंगे? आपको

यह बात माननी पड़ेगी कि कई रजवाड़ोंमें जनता पीसी जा रही है। राजे उन्हें क्रूरतासे दबा डालते हैं। अंगरेजोंसे भी बढ़ कर वे अत्याचार करते हैं, और यदि आप हिन्दुस्थानमें ऐसा ही अत्याचार होना पसंद करते हों तो हमारी आपकी राय कभी मिल नहीं सकती। मेरी देशभक्ति मुझे यह नहीं सिखलाती कि अंगरेज यहांसे चले जायं और हिन्दुस्थानके रजवाड़े लोगोंको पददलित करें। यदि मुझमें शक्ति हो तो मैं रजवाड़ोंके अत्याचारका भी उतना ही प्रतिकार करूं जितना कि अंगरेजोंके अत्याचारका। देशभक्ति तो मैं यह समझता हूं कि समस्त जनताका कल्याण हो, और यदि यह कल्याण अंगरेजोंके हाथों होता हो तो मैं उनके सामने अपने सिर झुकानेके लिये तैयार हूं। यदि कोई अंगरेज अत्याचारका प्रतिकार कर और देशकी सेवा करके हिन्दुस्थानको स्वतंत्रता दिलानेमें अपना जीवन उत्सर्ग करता है तो उस अंगरेजको मैं अपना भाई ही समझता हूं।

इसके अतिरिक्त, हिन्दुस्थान इटालीकी तरह तभी लड़ है जब उसके पास हाथियार हों। आपने इस समस्यापर भी विचार नहीं किया है। अंगरेजोंका रणसाज बड़ा भारी है; मैं उससे डरता नहीं, पर यह स्पष्ट है कि उनका सशस्त्र सामना करनेके लिये सहस्रों हिन्दुस्थानियोंको शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित करना होगा। यदि यह कभी संभव हो तो सोचिये, इसमें कितना समय लगेगा। और फिर यह भी बात है, हिन्दुस्थानमें ऐसी बड़ी भारी सशस्त्र सेना तैयार करना हिन्दुस्थानको यूरोप

चलाता है। तब उसकी वैसीही दुर्गति होगी जैसी यूरोपकी हो रही है। इसका यह मतलब हुआ कि हिन्दुस्थान यूरोपकी सभ्यता ग्रहण करे, और यदि हमारा यही मतलब है तो सबसे अच्छा उपाय यही है कि जो उस सभ्यताकी शिक्षामें इतने पटु हैं वे बने रहें। हम लोग तब कुछ अधिकारोंके लिये लड़ेंगे, जो कुछ मिलेगा, लेंगे और इस तरह दिन काटेंगे। पर बात यह है कि हिन्दुस्थान शस्त्र ग्रहण न करेगा और यह अच्छा है कि वह शस्त्र ग्रहण नहीं करता।

पाठक—आप बातको बहुत बढ़ा ले गये। सबको सशस्त्र होनेकी आवश्यकता नहीं है। पहले, हम लोग कुछ अंगरेजोंको मार डालेंगे और दहशत पैदा कर देंगे; तब कुछ लोग, जिनके पास शस्त्र रहेंगे, उनसे मैदानमें लड़ेंगे। हमारे दो ढाई लाख आदमी मरेंगे, पर देश हमारा हमें मिल जायगा। हम लोग लुक छिपकर लड़ाई लड़ेंगे और अंगरेजोंको हरा देंगे।

संपादक—मतलब यह कि आप हिन्दुस्थानकी पवित्र भूमिको अपवित्र किया चाहते हैं। खून करके हिन्दुस्थानको स्वतंत्र करनेका विचार आपको थर्राता नहीं? जरूरत इस बातकी है कि हम लोग अपनीही हत्या कर डालें। दूसरोंको मारनेका ख्याल दिलमें ले आना कायरता है। खून खराबीसे आप किसको स्वतंत्र करना चाहते हैं? हिन्दुस्थानके करोड़ों आदमी यह नहीं चाहते। आधुनिक सभ्यताकी मदिरा पान कर उसके नशेमें जो चूर हैं उनके ये ख्याल हैं। खून करके जो बड़े होंगे वे देशको सुख

सोलहवां परिच्छेद

पाशविक बल

पाठक—यह एक नया सिद्धान्त है कि भयसे जो चीज दी जाती है वह तभीतक रहती है जबतक वह भय बना रहता है। पर, जो चीज एकबार दे दी गयी वह कोई लौटा नहीं सकता।

सम्पादक—नहीं, यह बात नहीं है। १८५७ की घोषणा गदरके अन्तमें शान्ति स्थापित करनेके लिये हुई थी। जब शांति हो गयी और लोग अपने अपने काममें लगे तब उसका सुर बदल गया। यदि कोई चोर दंडके भयसे चोरी करना छोड़ देता है तो जिस घड़ी वह भय न रहेगा, वह फिरसे चोरी करने लग जायगा। यह सबके अनुभव की बात है। हम लोगोंने यह मान लिया है कि जबर्दस्ती मनुष्योंसे चाहे जो काम कराया जा सकता है और इसलिये हम लोग बलप्रयोग किया करते हैं।

पाठक—पर यह कह कर आप अपनी ही बातका खंडन कर रहे हैं। आपको यह मालूम है कि अंगरेजोंने अपने देशमें जो कुछ पाया पाशविक बलके प्रयोगसे ही पाया है। मैं यह जानता हूं कि आप यह कह चुके हैं कि उन्होंने जो कुछ पाया है वह व्यर्थ है, पर इससे मेरी दलील नहीं कटती। उन्होंने व्यर्थ वस्तुएं चाहीं और वेही उन्हें मिलीं। मेरा कहना यह है कि उनकी इच्छा पूर्ण

नहीं दे सकते। जो लोग यह समझते हैं कि ढिंगराके अथवा ऐसेही अन्य कामोंसे भारतका लाभ हुआ है वे बड़ी भूल कर रहे हैं। ढिंगरा देशभक्त था, पर उसका प्रेम अन्धा था। उसने अपना शरीर सुस्थानमें अर्पण नहीं किया; ऐसे कामोंका परिणाम खराब ही होगा।

पाठक-पर आपको यह मानना पड़ेगा कि इन खूनोंसे अंगरेज डर गये और लार्ड मोर्लेके रिफार्म इसी डरके कारण हुए।

संपादक—अंगरेज जाति कायर भी है और वीर भी। मैं समझता हूं, वह बारूदके वसमें बहुत जल्द आ जाती है। यह संभव है कि लार्ड मोर्लेने डरके कारण रिफार्म दिये हों, पर डरसे जो चीज दी जाती है वह तभीतक रहती है जबतक वह डर बना रहता है।

तो दूसरे प्रकारका उपाय किया जायगा। यदि कोई अंगरेज हो तो आप शायद कहेंगे कि हिन्दुस्थानी चोरके साथ जो उपाय किया जायगा उससे भिन्न उसके साथ किया जायगा। यदि कोई दुर्बल आदमी हो तो उसके लिये किया जानेवाला उपाय एक बलिष्ठ आदमीके लिये किये जानेवाले उपायसे भिन्न रहेगा; और यदि वह चोर अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित हो तब तो आपको चुप ही रहना होगा। इस प्रकार गुरुजनसे लेकर सशस्त्र मनुष्यतक कई प्रकार हैं। ऐसा भी हो सकता है कि चोर चाहे गुरुजन हों, चाहे कोई दैत्य हो, मुंहपर चादर ओढ़ कर सोनेके बहाने पड़े ही रहना पड़े। कारण यह है कि गुरुजन भी सशस्त्र हो सकते हैं, और हथियारके सामने आनेके बदले चोरी होने देनाही गनीमत मालूम हो। गुरुजनके प्रति करुणासे कंठ रूंध जायगा, पराये आदमीपर क्रोध उत्पन्न होगा और हम परस्परके शत्रु हो जायंगे। ऐसी विचित्र दशा है। इन दृष्टान्तोंसे हमारी आपकी राय चाहे इस सम्बन्धमें न मिले कि कहां क्या उपाय करना चाहिये। मैं स्वयं इन सब अवसरोंपर जो उपाय करना चाहिये उसे स्पष्ट देख रहा हूं, पर उस उपायसे आप घबरा जायंगे। इसलिये उसे आपके सामने रखते संकोच होता है। आप स्वयं तर्कसे जान लें, और न जान सकें तो यह स्पष्ट है कि देशकालपात्रके अनुसार भिन्न भिन्न उपायोंसे काम लेना पड़ेगा। यह भी आप समझ गये होंगे कि बिना विचारे कोई भी उपाय करनेसे काम न चलेगा, देशकालपात्रके अनुसार ही वह उपाय होना

प्राप्त होते हैं जो अवतक उन्हें नहीं मिले हैं। इसलिये इङ्गलैंडमें यही तमाशा देखनेमें आता है कि सब कोई अपने अपने अधिकारकी पुकार मचाये हुए हैं, कोई अपने कर्तव्यको नहीं सोचता। और जहां प्रत्येक मनुष्य अधिकार मांग रहा है वहां कौन किसको अधिकार दे? यह मेरे कहनेका मतलब नहीं है कि ये लोग अपना कर्तव्य पालन करतेही नहीं, पर मेरा यह कहना है कि उन अधिकारोंके साथ जो कर्तव्य पालन होना चाहिये वह नहीं होता। और उस विशिष्ट कर्तव्यका पालन न करनेसे अर्थात् योग्यता लाभ न करनेसे, उनके अधिकार उनके सिरपर बोझ हुए हैं। यही बात यों कह सकते हैं कि जैसे साधनसे उन्होंने काम लिया वैसाही फल भी उन्होंने पाया है। यदि मैं तुम्हारी घड़ी छीनना चाहूं तो मुझे उसके लिये लड़ना होगा, यदि खरीदना चाहूं तो दाम देना होगा, और यदि दानके तौरपर चाहूं तो मांगना होगा। यदि चोरी करूं तो चोरीका माल, खरीद करूं तो अपना माल और मांग कर लूं तो खैरातका माल समझा जायगा। इस प्रकार तीन भिन्न साधनोंके तीन भिन्न फल स्पष्ट सामने आ गये। क्या अब भी आप यही कहेंगे साधन कैसा ही हो तो क्या?

अब आपके चोरवाले दृष्टान्तका विचार करें। आप जो यह कहते हैं कि चोर चाहे जिस उपायसे निकाला जा सकता है सो भी ठीक नहीं है। यदि कोई गुरुजन हों जो चोरी करने आये हों तो एक प्रकारका, और कोई बेजानपहचानका आदमी हो

साधनका उपयोग करनेसे उनकीसी ही सिद्धी होगी। आप यह मानते हैं कि वैसी सिद्धी हम लोग नहीं चाहते। आप जो यह समझते हैं कि साधन और साध्यमें कोई सम्बन्ध नहीं सो यही मारी भूल है। इसे भूलके कारण धर्मात्मा समझे जानेवाले मनुष्योंने बड़े भयंकर अपराध किये हैं। आपका तर्क ऐसा है मानो बबूरका पेड़ लगानेसे उसमें आम फलेंगे। सागर पार करनेके लिये जहाजपर ही सवार होना होता है, गाड़ीकी सवारीसे यहां काम लें तो सवारी और सवार दोनोंको जलसमाधि मिले। जैसे देवता होते हैं वैसे ही उनके उपासक भी। इसका अर्थ बहुत छिन्न भिन्न कर दिया गया है और इससे मनुष्य रास्ता भूल गये हैं। साधनको बीज और साध्यको वृक्ष कह सकते हैं; और बीज और वृक्षमें जैसा सम्बन्ध है वैसाही अटूट सम्बन्ध साधन और साध्यके बीचमें है। मायाको आलिंगन करनेसे ईश्वरकी प्राप्ति हो जाय यह कभी संभव नहीं है। इसलिये यदि कोई कहे कि "मुझे ईश्वरकी आराधना करनी है और मायाकी उपासना करके मैं यह फल पाऊंगा" तो यह मूर्खता ही समझी जायगी। "जैसी करनी वैसी भरनी" यह अबाधित सिद्धान्त है। १८३३ में अंगरेजोंने उधम उत्पात मचाकर वोट देनेका अधिक अधिकार पाया। पाशविक बलका उपयोग करके क्या उन्होंने अपने कर्तव्यको कुछ अधिक समझा? उन्होंने वोटका अधिकार चाहा और भौतिक बलका उपयोग करके उन्होंने वह पा लिया। पर वास्तविक

हुई। उन्होंने उपाय क्या किया इससे क्या मतलब? लक्ष्य यदि हमारा अच्छा है तो वह चाहे जिस उपायसे, जोरजबर्दस्तीसे भी क्यों न प्राप्त किया जाय? घरमें चोर घुस आवे तो क्या मैं यह सोचता बैठूं कि किस उपायसे काम लेना चाहिये और किस उपायसे नहीं? वहां तो यही कर्तव्य है कि जिस तरहसे हो, गर्दन पकड़ कर उसे निकाल बाहर करो। आप यह तो स्वीकार करते हैं कि प्रार्थना करनेसे हम लोगोंको कुछ मिला न कुछ मिलेगा। तब क्या कारण है कि भौतिक बलसे काम न लिया जाय? और जो कुछ मिला है उसकी रक्षाके लिये उसी बलसे वह भय भी उतना बना रखना चाहिये जितना आवश्यक हो। कोई बच्चा यदि आगमें पैर डालता हो तो उसे रोकनेके लिये बलप्रयोग किया जाय तो शायद आपको कुछ एतराज न होगा? किसी तरहसे हो, अपना मतलब निकालना है—अपना उद्देश्य सिद्ध करना है।

सम्पादक—आपके तर्कमें केवल सत्याभास है। बहुतोंको इसने भरमाया है। पहले मैं भी ऐसा ही कहा करता था। पर मैं समझता हूं, अब मैं अधिक जानता हूं और मैं आपका भ्रम दूर करनेका प्रयत्न करूंगा। पहले इस दलीलको लीजिये कि चूंकि अंगरेजोंने पाशविक बलसे ही अपना उद्देश्य सिद्ध किया, हमलोग भी अपना मतलब साधनेके लिये उस बलका उपयोग करें तो कोई बेजा बात नहीं। यह बिलकुल सच है कि अंरेगजोंने पाशविक बलसे काम लिया, और हम लोग भी ऐसा कर सकते हैं, पर उनकेसे

तो दूसरे प्रकारका उपाय किया जायगा। यदि कोई अंगरेज हो तो आप शायद कहेंगे कि हिन्दुस्थानी चोरके साथ जो उपाय किया जायगा उससे भिन्न उसके साथ किया जायगा। यदि कोई दुर्बल आदमी हो तो उसके लिये किया जानेवाला उपाय एक बलिष्ठ आदमीके लिये किये जानेवाले उपायसे भिन्न रहेगा; और यदि वह चोर अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित हो तब तो आपको चुप ही रहना होगा। इस प्रकार गुरुजनसे लेकर सशस्त्र मनुष्यतक कई प्रकार हैं। ऐसा भी हो सकता है कि चोर चाहे गुरुजन हो, चाहे कोई दैत्य हो, मुंहपर चादर ओढ़ कर सोनेके बहाने पड़े ही रहना पड़े। कारण यह है कि गुरुजन भी सशस्त्र हो सकते हैं, और हथियारके सामने आनेके बदले चोरी होने देनाही गनीमत मालूम हो। गुरुजनके प्रति करुणासे कंठ रूंध जायगा, पराये आदमीपर क्रोध उत्पन्न होगा और हम परस्परके शत्रु हो जायंगे। ऐसी विचित्र दशा है। इन दृष्टान्तोंसे हमारी आपकी राय चाहे इस सम्बन्धमें न मिले कि कहां क्या उपाय करना चाहिये। मैं स्वयं इन सब अवसरोंपर जो उपाय करना चाहिये उसे स्पष्ट देख रहा हूं, पर उस उपायसे आप घबरा जायंगे। इसलिये उसे आपके सामने रखते संकोच होता है। आप स्वयं तर्कसे जान लें, और न जान सकें तो यह स्पष्ट है कि देशकालपात्रके अनुसार भिन्न भिन्न उपायोंसे काम लेना पड़ेगा। यह भी आप समझ गये होंगे कि बिना विचारे कोई भी उपाय करनेसे काम न चलेगा, देशकालपात्रके अनुसार ही वह उपाय होना

चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि आपका यह कर्तव्य नहीं है कि चाहे जिस उपायसे चोरको सजा दें।

अच्छा और आगे बढ़िये। उस सशस्त्र आदमीने मान लो कि आपका माल चुराया, वह आपके दिलमें आ बैठा, क्रोधसे आग आग हो गये; आपने कहा, मैं उस बदमाशको अच्छी तरह खबर लूंगा, अपने लिये नहीं बल्कि अपने पड़ोसियोंकी भलाईके लिये। आपने कई हथियारबन्द आदमी इकट्ठे किये, उसके मकानपर चढ़ जाने लगे, उसे खबर मिली और वह भाग गया; वह भी क्रोधसे आग हो गया। उसने भी अपने डाकू भाइयोंको इकट्ठा किया और आपको ललकारके साथ यह संदेसा भेजा कि हम तुम्हारे मकानपर दिन दहाड़े डाका डालेंगे, जो करना हो कर लो। आप शक्तिशाली हैं, आपको उससे कुछ भय नहीं हुआ और आपने कहा, अच्छा आने दो। इस बीच वह डाकू आपके पड़ोसियोंको तंग करना आरंभ करता है। पड़ोसी आपके पास आकर शिकायत करते हैं, आप उत्तर देते हैं कि यह सब मैं आप लोगोंके लिये कर रहा हूं, मेरा माल चोरी गया उसकी मुझे उतनी परवाह नहीं है। आपके पड़ोसी जवाब देते हैं कि उस डाकूने पहले कभी हम लोगोंको न सताया, जबसे आपने उससे लड़ाई छेड़ी है तभीसे वह हमलोगोंके पीछे पड़ा है। इस तरह सांप छुछूंदरकीसी अवस्थामें आप बेतरह जा फंसते हैं। उन बेचारोंपर आपको [illegible] आती है और वे जो कहते हैं वह भी सच कहते हैं। अब

क्या करेंगे ! अब यदि उस डाकूको यौंही छोड़ दें तो आपके ऊपर लानत है। इसलिये उन गरीब भाइयोंसे आप कहते हैं, "कोई हर्ज नहीं ; मेरे पास जो कुछ है, आपका है। मैं आपको हथियार देता हूं, इसके चलानेका ढंग बतलाता हूं ; उस बदमाशके नाकों दम कर दो, उसको यों ही न छोड़ो।" इस तरह लड़ाई बढ़ने लगी, डाकुओंकी संख्या बढ़ी, आपके पड़ोसियोंने जान बूझकर यह हत्या मोल ली। इस प्रकार डाकूसे बदला लेनेकी इच्छाका यह फल हुआ कि आपने अपनी शान्ति भंग की, रात दिन लूट मारका भय होने लगा ; साहस घटने और कायरता बढ़ने लगी। यदि धीरजके साथ इस बातपर विचार कीजिये तो आप [illegible]ेंगे कि मैंने बातका बतगड़ किया है। यह एक [illegible] दूसरे उपायकी परीक्षा करें। इस सशस्त्र [illegible] एक अज्ञान भाई समझते हैं, और [illegible] समझाना चाहते हैं ; आप यह कहते [illegible] ारा भाई है ; आपको यह पता नहीं [illegible] ारी करनेपर उतारू हुआ, इसलिये [illegible] मौका मिलनेपर चोरी करनेकी [illegible]। आप अपने मनमें यह सोच रहे [illegible] करने आपके यहां पहुंचता है। आप [illegible] करते हैं। आप यह सोचते हैं [illegible] गया है। इसके बादसे आप [illegible] है, सोनेका

हैं और अपनी चीजें इस प्रकार रखते हैं कि बड़ी आसानीसे उसके हाथ लग जायं। चोर फिर आता है और यह सामान देखकर हैरान होता है क्योंकि उसके लिये यह बिलकुल नयी बात है। फिर भी चोरी करके ही वहांसे लौटता है। पर उसके मनमें चलविचल होने लगती है। आपके बारेमें वह गांवमें पूछताछ करता है और उसे आपके उदार और प्रेम भरे हृदयका पता लगाता है, उसे पश्चात्ताप होता है, आपसे माफी मांगता और आपकी चीजें लौटाकर चोरीकी लतसे भी मुक्त हो जाता है। वह आपका दास हो जाता है और आप उसे अच्छा काम दिला देते हैं। यह दूसरा उपाय हुआ। इस प्रकार आपने समझ लिया होगा कि साधनोंकी भिन्नता होनेसे परिणाम भी भिन्न होते हैं। इससे मैं यह तात्पर्य नहीं निकालता कि सब चोर और डाकू ऐसा ही वर्ताव करेंगे या सभी मनुष्य आपके समान दयावान और प्रेमी होंगे : पर मैं इतना ही दिखलाना चाहता हूं कि केवल सदुपायसे ही सत्कार्य होता है और चाहे सर्वत्र ऐसा न होता हो पर अधिक प्रायः प्रेम और दयाकी शक्ति शस्त्रकी शक्तिसे अधिक कारगर होती है। पाशविक बलके उपयोगमें हानि होती है, दयाके मार्गमें कभी नहीं।

अब प्रार्थनाके उपायका विचार करें। इस बातको तो कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि बिना किसी बलका सहारा प्रार्थना कोई चीज नहीं है। तथापि स्वर्गवासी जस्टिस कहा करते थे कि प्रार्थनापत्रोंसे बड़ा काम निकलता है

क्योंकि इनसे लोगोंको शिक्षा मिलती है। इनसे लोगोंको अपनी हालत मालूम होती है और शासकोंको चेतावनी मिल जाती है। इस दृष्टिसे प्रार्थनापत्र बिलकुल ही निकम्मे नहीं होते। बराबरीवाले आदमीसे की जानेवाली प्रार्थना सभ्यताका लक्षण है, पर दासकी प्रार्थना उसके दासत्वका चिह्न है। बलका सहारा लिये हुई प्रार्थना बराबरीवाला ही करता है और जब वह अपनी इच्छा इस प्रकार प्रार्थनाके रूपमें प्रकट करता है तो उससे उसकी उदारताही प्रकट होती है। प्रार्थनापत्रोंको दोही प्रकारके बलका सहारा मिल सकता है। "अगर यह न दोगे तो तुम्हारा यह नुकसान हम करेंगे" यह एक प्रकारका बल है। यह शस्त्रका बल है जिसके दुष्परिणामोंकी आलोचना की जा चुकी है। दूसरे प्रकारका बल इस प्रकार है, "हम लोगोंकी यह मांग पूरी न की जायगी तो हमलोग प्रार्थनाही न करेंगे। आप हमारा तभीतक शासन कर सकते हैं जबतक हम अपनेको शासित माने हुए हैं; फिर हम लोग आपसे कोई सरोकार न रखेंगे।" इसमें जो बल है उसे प्रेमबल, आत्मबल या आमतौरपर भ्रमके कारण निष्क्रिय प्रतिरोध कहते हैं। यह बल अविनाशी है। इसका जो ठीक ठीक उपयोग करता है वह अपना देशकाल समझता है। एक पुरानी कहावत है कि "एक नकार छत्तीस रोग दूर करता है।" प्रेम या आत्मबलके सामने शस्त्रका बल पासंग भी नहीं है।

अब आपके अन्तिम अर्थात् आगमें पैर डालनेवाले बालकके

दृष्टान्तपर विचार करें। इससे भी आपकी बात सिद्ध न होगी। लड़केके साथ यथार्थमें आप क्या करते हैं? मान लें कि उसके शरीरमें इतना बल है कि आपको एक तरफ ठेल कर वह आगमें कूद पड़ता है तो आप उसे रोक नहीं सकते। आपके लिये दोही उपाय हैं—या तो उस बालकको मार डालें जिसमें वह आगमें जलकर भस्म न हो या खुद मर जायं जिसमें उसे जलते हुए अपनी आंखों न देखना पड़े। आप उसे मार न डालेंगे। यदि आपका हृदय दयासे ओत-प्रोत भरा न हो तो बालकके सामने हार मानकर उससे पहले आप स्वयं आगमें न कूदेंगे। आप लाचार होकर बालकको आगमें घुसने देते हैं। इस तरह आप यहां अपने भौतिक बलका प्रयोग नहीं करते। बालकको आगमें कूद पड़नेसे बचाने लिये जबर्दस्तीसे भी काम लें तो मैं समझता हूं कि इसे आप बलप्रयोग—हलका प्रयोग ही सही—न कहेंगे। यह बल दूसरे प्रकारका है और यह जाननेकी जरूरत है कि यह क्या है।

स्मरण रखें कि बालकको इस प्रकार रोकनेमें केवल उसीके कल्याणपर आपका ध्यान है, उसीके लाभके लिये आप इस [illegible] काम ले रहे हैं। आपका यह दृष्टान्त अंगरेजोंपर [illegible] घटता। अंगरेजोंके विरुद्ध पाशविक बलका उपयोग [illegible] हुए आप केवल अपना याने अपने राष्ट्रका लाभ देखते हैं। कहें कि अंगरेजोंके कर्म बुरे होनेके कारण आगके समान और अज्ञानके कारण वे इन कर्मोंमें फंसते हैं और वे एक

बालककी ही अवस्थामें हैं, और इस बालकको आप बचाना चाहते हैं तो आपको हर किसीके ऐसे कुकर्मको बालकके कर्मके समान ही सह लेना होगा, आत्मबलिदान करना होगा। यदि आपमें ऐसी असीम करुणा है तो उसके उपयोगमें आपकी जय हो।

सत्रहवां परिच्छेद

सत्याग्रह

पाठक—जिस बलको आप आत्मबल या सत्यबल कहते हैं उसकी सफलताका कोई हवाला इतिहासमें भी है? किसी राष्ट्रको आत्मबलके सहारे ऊपर उठते नहीं सुना। मैं अब भी यही समझता हूं कि कुकर्मी बिना शारीरिक दण्ड पाये कुकर्म करनेसे बाज न आवेंगे।

सम्पादक—गोसामी तुलसीदासजीने कहा है कि—

दया धर्मको मूल है नरक मूल अभिमान।
कबहूं दया न छोड़िये जब लग घटमें प्राण॥

मुझे यह एक वैज्ञानिक सत्य प्रतीत होता है। दो और दो चार होते हैं इसमें जैसे किसीको सन्देह नहीं होता वैसेही इस सिद्धान्तपर भी मुझे कभी सन्देह नहीं होता। प्रेमका बल, आत्मबल और सत्यबल सब एक ही हैं। इसके कार्यका प्रमाण पद

पदपर मिल रहा है। इस बलके बिना सृष्टि ही नष्ट हो जाती। पर आप इतिहासका हवाला चाहते हैं। इसलिये पहले इतिहास क्या है, यह जानना चाहिये। इतिहास शब्दका अर्थ है, "ऐसा हुआ"। यदि इतिहासका यही अर्थ हो तो इसके असंख्य दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। पर इतिहाससे यदि राजों महाराजोंका गुण-गान हो तो ऐसे इतिहासमें आत्मबल या सत्याग्रहका प्रमाण नहीं मिलेगा। लोहेकी खानसे सोना नहीं निकलता। हम लोग जिसको इतिहास समझते हैं उसमें संसारके युद्धोंका वृतान्त रहता है। अंगरेजोंमें एक कहावत है कि जो जाति बिना इतिहास अर्थात् बिना युद्धके है वह सुखी है। इतिहासमें इन बातोंका ठीक ठीक पता रहता है कि राजे क्या क्या चाल चले, वे एक दूसरेके शत्रु कैसे हुए और कैसे उन्होंने एक दूसरेका खून

संसारमें अबतक इतने मनुष्य जीवित हैं इसीसे पता लगता है कि संसारका आधार शस्त्रबल नहीं बल्कि सत्यबल है—प्रेमबल है। अतएव इस बलकी सफलताका सबसे जबर्दस्त प्रमाण यही है कि संसारमें इतने संग्राम हुए पर संसार अभी चला ही जाता है।

सहस्रों नहीं बल्कि लाखों मनुष्योंका जीवन इसी बलके सहारे है। लाखों परिवारोंके मामूली झगड़े इसी बलके प्रयोगसे नित्य ही मिट जाया करते हैं। सैकड़ों राष्ट्र शान्तिसे रहते हैं। इतिहास इस बातका ध्यान नहीं रखता न रख सकता है। इतिहास तो इस आत्मबल या प्रेमबलके कार्यमें पड़नेवाले विघ्नों-का वृत्तान्त है। दो भाई झगड़ते हैं, एकको पश्चात्ताप होता है और उसके अन्दर छिपा हुआ प्रेम जाग उठता है; दोनों भाई फिर शान्तिसे रहने लगते हैं, कोई उधर ध्यान भी नहीं देता। पर यदि वही दोनों भाई वकीलोंकी बिचवईसे या और किसी कारणसे एक दूसरेके शत्रु होते या अदालतकी सीढ़ी चढ़ते हैं—पाशविक बलका यह भी एक नमूना है—तो समाचारपत्रोंमें उनकी सब बातें छप जाती हैं, अड़ोसी पड़ोसियोंमें उनकी चर्चा फैल जाती है, और वैसाही मामला हुआ तो इतिहासमें भी उनके नाम आ जाते हैं। और जो बात परिवारोंके विषयमें सत्य है वही राष्ट्रोंके विषयमें भी। यह कोई बात नहीं है कि परिवारोंके लिये एक नियम हो और राष्ट्रोंके लिये कुछ और। इतिहास इस प्रकार प्रकृतिके कार्यमें पड़नेवाले विघ्नोंका वृत्तान्त मात्र है। आत्म-

पीछेसे मनाइ मिल हुए हैं। कोई मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता कि उससे कभी कोई भूल न होगी, या जिसे वह अन्याय समझे वह अन्याय ही होगा पर इसमें सन्देह नहीं कि जिसे जब-तक वह अन्याय समझता है तब उसके लिये तबतक अन्याय ही है। इसलिये यह ठीक ही है कि जिसे वह अन्याय समझता है उस कामको वह न करे और उसका परिणाम भी भोगे। आत्मिक बलप्रयोगकी यही कुंजी है।

पाठक—जब आप कानूनकी मर्यादा तोड़ेंगे—यह तो पहले दरजेकी अराजभक्ति है, हम लोग सदासे राजभक्त समझे गये हैं और यह काम तो गरमदलवालोंसे भी आगे बढ़नेका काम है। उनका कहना यह है कि जो कानून बन गये हों उन्हें मानना चाहिये और यदि कानून अच्छे न हों तो कानून बनानेवालोंको जबर्दस्तीसे भी हटा देना चाहिये।

सम्पादक—मैं उनसे आगे बढ़ता हूं या उनके पीछे रहता हूं इससे कुछ मतलब नहीं है। हमारा काम केवल यह देखना है कि सत्य क्या है, और जो सत्य हो उसका अनुसरण करें। हमलोग कानूनपसंद कहलाते हैं इसका यही मतलब है कि हम लोग सत्याग्रही हैं। यदि कोई कानून हमें ठीक नहीं जंचता तो हम कानून बनानेवालोंका सिर नहीं फोड़ते, पर स्वयं दुःख उठाते हैं और कानूनको नहीं मानते। कानून चाहे अच्छा हो या बुरा उसको मानना ही चाहिये यह एक नया ख्याल है। अगले जमानेमें ऐसी कोई बात नहीं थी। लोग जिन कानूनोंको ठीक न

समझते उन्हें कभी न मानते और उन कानूनोंको तोड़नेका दंड स्वीकार करते थे। कानून चाहे अच्छा हो या बुरा उसे मानना ही चाहिये यह कल्पना ही हमारे पुरुषार्थके विरुद्ध है। यह शिक्षा धर्मके विरुद्ध और गुलामीकी पहचान है। यदि सरकार कहे कि नंगे बदन सड़कोंपर चलो तो यह भी माननेकी बात है? यदि मैं सत्याग्रही हूं तो यही कहूंगा कि मुझे तुम्हारे कानूनसे कुछ सरोकार नहीं है। परंतु हम लोग अपने आपको इतना भूल गये हैं और इतने दब गये हैं कि अपमानकारी कानूनके सामने भी सिर झुकाते हैं।

जिस मनुष्यको अपने मनुष्यत्वका ज्ञान है, जो केवल ईश्वर-से डरता है वह और किसीसे न डरेगा। मनुष्यके बनाये कानून माननेके लिये मनुष्य विवश नहीं है। सरकार भी हमसे ऐसी अपेक्षा नहीं करती। सरकार यह नहीं कहती कि, "तुम्हें अमुक कार्य करना ही होगा," सरकार सिर्फ इतना ही कहती है कि, "यदि अमुक कार्य तुम न करोगे तो हम तुम्हें अमुक दंड देंगे।" हमलोग इतने गिर गये हैं कि हम यह समझते हैं कि जो कुछ कानूनमें लिखा है उसका अक्षर अक्षर पालन करना हमारा कर्तव्य और धर्म है। यदि मनुष्य केवल इतना जान ले कि अन्यायी कानूनको मानना मनुष्यत्वके विरुद्ध है तो कोई मानवी अत्याचार उसे दासत्वमें नहीं रख सकता। स्वयं-शासन या स्वराज्यकी यही कुंजी है।

यह समझना कि बहुमतसे बने हुए कानूनकी पाबंदी

अल्पसंख्यक लोगोंपर भी लाजिमी है, एक कुसंस्कार और नास्तिकपनेकी बात है। कितने ही दृष्टान्त ऐसे दिये जा सकते हैं जिनमें बहुमत मान्य कार्य अन्याय सिद्ध होंगे, और अल्पसंख्यक लोगोंकी राय ही ठीक जंचेगी। जितने सुधार होते हैं उनका आरम्भ अल्पसंख्यक लोगोंसे ही होता है जब बहुसंख्यक लोग उनका विरोध ही करते हैं। यदि डाकुओंकी जमातमें डाकेजनीका ज्ञान हरएकके लिये लाजिमी हो तो क्या एक साधु पुरुषके लिये भी उसका पालन करना आवश्यक है? जबतक यह कुसंस्कार बना रहेगा कि न्यायविरुद्ध कानूनोंका भी पालन करना मनुष्यका कर्तव्य है, तबतक गुलामी बनी ही रहेगी। सत्याग्रही ही इस कुसंस्कारको दूर कर सकता है।

पाशविक बलका प्रयोग करना, बारूदका उपयोग करना सत्याग्रहके विरुद्ध है, क्योंकि इसका यह मतलब है कि हम अपने विरोधीसे जबर्दस्ती वह काम कराना चाहते हैं जो वह खुशीसे नहीं करता। और यदि, जबर्दस्तीसे काम लेना न्याय है तो वह भी हमारे साथ वैसा ही व्यवहार करनेका अधिकारी है। इस प्रकार हम लोगोंमें समझौता कभी हो ही नहीं सकता। कोल्हूके बैलकी तरह आंखपर पट्टी बांधे चक्कर लगाते हुए हम भले ही मनके लड्डू खाया करें कि हमलोग उन्नति किये जा रहे हैं। जो लोग यह समझते हैं कि हम उन कानूनोंके कायल नहीं हैं जो हमारी विवेकबुद्धिके विरुद्ध हैं उनके लिये सत्याग्रहका मार्ग खुला हुआ है। अन्य सब मार्ग नाश करनेवाले हैं।

पाठक—आपने जो कुछ कहा उससे मैं यह नतीजा निकालता हूं कि सत्याग्रह दुर्बलके लिये बड़ा भारी शस्त्र है और जब यही दुर्बल सबल हो जायं तब वे शस्त्र ग्रहण भी कर सकते हैं।

संपादक—यह बड़ा भारी अज्ञान है। सत्याग्रह या आत्मिक बल सबसे श्रेष्ठ है। शस्त्रबलसे यह महत् है। फिर इसे दुर्बलका ही शस्त्र कैसे कह सकते हैं? भौतिक बलवालोंमें वह साहस नहीं होता, सत्याग्रहीमें जिसके होनेकी आवश्यकता होती है। क्या आप यह समझते हैं कि कभी कोई कायर भी उस कानूनको तोड़नेका साहस कर सकता है जिसे वह पसन्द नहीं करता? गरमदलवाले पाशविक बलको माननेवाले समझे जाते हैं। तब कानूनको माननेकी बात वे क्यों कहते हैं? मैं उन्हें दोष नहीं लगाता। वे कर भी और कुछ नहीं सकते। जब वे अङ्गरेजोंको निकाल कर स्वयं शासक बन बैठेंगे तब वे भी हमसे और आपसे अपने कानूनोंका पालन कराना चाहेंगे। उनके हिसाबसे यह बात ठीक भी है। पर सत्याग्रही यही कहेगा कि हम उस कानूनको मानेंगे जो हमारी विवेकबुद्धिके विरुद्ध है चाहे तोप दाग कर इस शरीरके टुकड़े टुकड़े कर डालो।

आप क्या समझते हैं? साहस किसमें है—तोपके पीछे खड़े रह कर दूसरोंको तोपके गोलोंसे उड़ा देनेमें या हंसते हुए तोपका सामना करनेमें? सच्चा वीर कौन है—वह जो मृत्युको मित्रकी तरह छातीसे लगाता है या वह जो दूसरोंकी मृत्युका

कारण होता है? विश्वास रखो, साहसहीन और पुरुषार्थरहित मनुष्य कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता।

यह बात मैं मानता हूं कि दुर्बलशरीर मनुष्य भी सत्याग्रह कर सकता है। जैसे एक आदमी सत्याग्रही हो सकता है वैसे लाखों आदमी भी हो सकते हैं। पुरुषोंके साथ स्त्रियां भी इसकी दीक्षा ले सकती हैं। इसके लिये फौजी तालीमकी जरूरत नहीं होती, युयुत्सु (जिजुत्सु)-की आवश्यकता नहीं होती। केवल मनः संयम चाहिये, और मनः संयम जब प्राप्त हो जाता है तब वनराजके समान मनुष्य स्वतन्त्र हो जाता है, और केवल उसके कटाक्षसे शत्रुका खून सूख जाता है।

सत्याग्रह सर्वांगीन शस्त्र है; इसका चाहे जिस प्रकारसे उपयोग हो सकता है; जो इसका उपयोग करता है और जिसके विरुद्ध इसका उपयोग किया जाता है दोनोंका ही इसमें कल्याण होता है। खूनका एक बूंद भी बिना गिराये इससे बड़े बड़े काम हो जाते हैं। इसपर कभी मोर्चा नहीं लगता, न कभी कोई इसे चुरा सकता है। सत्याग्रहियोंमें प्रतिस्पर्धा नहीं होती। सत्याग्रहकी तलवारके लिये म्यानकी जरूरत नहीं होती। यह बड़े आश्चर्यकी बात है जो आप ऐसे शस्त्रको दुर्बलका सहारा समझते हैं!

पाठक—आपने कहा है कि सत्याग्रह भारतका एक विशेष अधिकार है। क्या भारतवर्षमें कभी तोपोंसे काम नहीं लिया गया?

संपादक—आप हिन्दुस्थान याने हिन्दुस्थानके राजे समझते हैं। पर मेरे सामने, हिन्दुस्थान कहनेसे वे करोड़ों भाई आते हैं जिनकी बदौलत ही हिन्दुस्थानके राजे और हमलोग जीते हैं।

राजा सदा अपने राज शस्त्रोंसे काम लेंगे। बल प्रयोग करना उनका स्वभावसा हो गया है। वे हुकूमत करना चाहते हैं, पर जिन्हें हुक्म सिर्फ मानना है उन्हें तोपोंकी जरूरत नहीं होती, और संसारमें ऐसे ही लोगोंकी संख्या अधिक है। इन्हें शरीरबल या आत्मबलका अभ्यास करना पड़ता है। जहां ये शरीरबलका अभ्यास करते हैं वहां यह समझ लीजिये कि राजा और रैयत दोनों पागल हैं। पर जहां आत्मबलकी शिक्षा होती है वहां राजाकी आज्ञा तलवारकी धारके पार नहीं जा सकती, क्योंकि सच्चे आदमी अन्यायकी आज्ञाकी कुछ परवाह नहीं करते। किसान कभी शस्त्रसे जीते नहीं गये और न कभी जीते जायंगे। वे शस्त्रका उपयोग नहीं जानते, और दूसरे लोग यदि उसका उपयोग करते हैं तो उससे वे नहीं डरते। वह राष्ट्र सचमुच ही महान् है जो मृत्युको अपना तकिया समझता है। जो लोग मृत्युको कुछ नहीं समझते वे डरें तो किससे डरें? जो लोग पाशविक बलके जादूके वसमें आ गये हैं उनके लिये यह चित्र अतिरंजित न होगा। सच बात तो यह है कि हिन्दुस्थानमें [illegible] प्रायः प्रत्येक कार्यमें सत्याग्रहसे ही काम लिया [illegible]। शासक जब कोई काम बुरा करते हैं तो हम उनका साथ नहीं देते। यही सत्याग्रह है।

मुझे एक दृष्टान्त याद आता है। किसी छोटी रियासतमें वहांके राजाने कोई ऐसी आज्ञा दी जिससे गांववालोंने अपना अपमान समझा। गांववाले गांव छोड़ कर चले जाने लगे। राजा तब घबराया, उसने प्रजासे माफी मांगी और अपनी आज्ञा वापिस ली। हिन्दुस्थानमें ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल सकते हैं। वास्तविक स्वराज्य वहीं संभव है जहां लोग सत्याग्रहका सिद्धान्त मानते हैं। और किसी प्रकारका राज्य पर-राज्य है।

पाठक—तब तो आप यह भी कहेंगे कि शरीर सुदृढ़ करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है?

संपादक—ऐसी बेतुकी बात मैं नहीं कहूंगा। शरीर सुदृढ़ हुए बिना सत्याग्रही होना बड़ा कठिन है। नियम तो यह है कि दुर्बल शरीरमें रहनेवाला मन भी दुर्बल होता है और जहां मनोबल नहीं वहां आत्मबलका होना भी असंभव है (नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः)। हम लोगोंको अपना शारीरिक सामर्थ्य बढ़ानेके लिये बालविवाह तथा विलासितासे छुटकारा पाना होगा। यदि किसी दुर्बल शरीरवाले आदमीको मैं तोपके मुंहका सामना करनेके लिये कहूं तो लोग मेरी हंसी उड़ावेंगे।

पाठक—आपने जो कुछ कहा उससे यह मालूम होता है कि सत्याग्रही होना कोई साधारण काम नहीं है, और यदि यह बात है तो कृपा कर यह बतलाइये कि सत्याग्रही कोई कैसे हो सकता है?

सम्पादक—सत्याग्रही होना आसान भी है और कठिन भी।

संपादक—आप हिन्दुस्थान याने हिन्दुस्थानके राजे समझते हैं। पर मेरे सामने, हिन्दुस्थान कहनेसे वे करोड़ों भाई आते हैं जिनकी बदौलत ही हिन्दुस्थानके राजे और हमलोग जीते हैं।

राजा सदा अपने राज शस्त्रोंसे काम लेंगे। बल प्रयोग करना उनका स्वभावसा हो गया है। वे हुकूमत करना चाहते हैं, पर जिन्हें हुक्म सिर्फ मानना है उन्हें तोपोंकी जरूरत नहीं होती, और संसारमें ऐसे ही लोगोंकी संख्या अधिक है। इन्हें शरीरबल या आत्मबलका अभ्यास करना पड़ता है। जहां ये शरीरबलका अभ्यास करते हैं वहां यह समझ लीजिये कि राजा और रैयत दोनों पागल हैं। पर जहां आत्मबलकी शिक्षा होती है वहां राजाकी आज्ञा तलवारकी धारके पार नहीं जा सकती, क्योंकि सच्चे आदमी अन्यायकी आज्ञाकी कुछ परवाह नहीं करते। किसान कभी शस्त्रसे जीते नहीं गये और न कभी जीते जायंगे। वे शस्त्रका उपयोग नहीं जानते, और दूसरे लोग यदि उसका उपयोग करते हैं तो उससे वे नहीं डरते। वह राष्ट्र सचमुच ही महान् है जो मृत्युको अपना तकिया समझता है। जो लोग मृत्युको कुछ नहीं समझते वे डरें तो किससे डरें? जो लोग पाशविक बलके जादूके बसमें आ गये हैं उनके लिये यह चित्र अतिरंजित न होगा। सच बात तो यह है कि हिन्दुस्थानमें सर्वसाधारणने प्रायः प्रत्येक कार्यमें सत्याग्रहसे ही काम लिया है। शासक जब कोई काम बुरा करते हैं तो हम उनका साथ नहीं देते। यही सत्याग्रह है।

पत्नीको किसी प्रकार अपने साथ रखे? पत्नीके क्या अधिकार हैं? इत्यादि। तथापि मनस्वी कार्यार्थी इन प्रश्नोंको आप ही हल कर लेंगे।

ब्रह्मचर्यकी जैसी आवश्यकता है वैसी ही निर्धनताकी भी है। धनकी इच्छा और सत्याग्रह साथ नहीं रह सकते। जिनके पास धन है वे उसे फेंक दें इसकी अपेक्षा नहीं है पर उस धनसे वे उदासीन रहें। उन्हें इस बातके लिये तैयार रहना चाहिये कि उनके पास चाहे एक कौड़ी भी न रहे पर सत्याग्रह न छूटे।

हमारी इस बातचीतमें सत्याग्रहको हमने सत्य-बल कहा है। इसलिये सत्यका अनुसरण हर हालतमें आवश्यक है। इस सम्बन्धमें ऐसे तात्विक प्रश्न उपस्थित होते हैं जैसे, किसीकी जान बचानेके लिये झूठ बोलना चाहिये या नहीं, इत्यादि। पर ऐसे प्रश्न वे ही लोग किया करते हैं जो असत्य भाषणका समर्थन करना चाहते हैं। जो सदा सत्यका पालन करना चाहते हैं वे कभी ऐसे असमंजसमें नहीं पड़ते और यदि पड़ते हैं तो इससे भी उनकी रक्षा हो जाती है।

सत्याग्रह निर्भयताके बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। सत्याग्रहके पथपर वेही लोग चल सकते हैं जो भयसे मुक्त हैं, चाहे वह भय अपनी सम्पत्तिका, झूठे सम्मानका, अपने नातेदारोंका, सरकारका, शरीरकष्टका अथवा मृत्युका ही क्यों न हो।

इन साधनोंको कठिन समझ कर छोड़ देना ठीक नहीं है।

मेरी जानकारीमें एक चौदह वर्षका लड़का था जो सत्याग्रही था ; बीमार आदमियोंको भी सत्याग्रह करते मैंने देखा हैं ; और ऐसे भी लोगोंको मैंने देखा है कि शरीरसे सुदृढ़ और हर तरहसे सुखी होनेपर भी वे सत्याग्रह नहीं कर सके। बड़े अनुभवके बाद मुझे यह मालूम हुआ है कि जो लोग देशसेवाके निमित्त सत्याग्रही होना चाहते हैं उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन, दरिद्रताको ग्रहण, सत्यका अनुसरण और निर्भयताका अभ्यास करना चाहिये।

ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा साधन है जिसके बिना आवश्यक मनोबल नहीं प्राप्त हो सकता। जिस मनुष्यका आचरण शुद्ध नहीं है उसमें धैर्य नहीं रहता, उसका खून सूख जाता है और वह कायर बनता है। जिसका मन पाशविक मनोविकारोंके पीछे दौड़ रहा है वह कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। यह बात सिद्ध करनेके लिये असंख्य दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। तब यह प्रश्न होता है कि विवाहित मनुष्य क्या करे। पर यह प्रश्न भी उपस्थित न होना चाहिये। पति और पत्नी भी जब मनोविकारोंकी तृप्ति करनेमें लगते हैं तो यह भी पशुतुल्य आचरण ही है। यह भोग भी वंशविस्तारका हेतु है और अन्यथा इसकी भी सख्त मनाई है। परन्तु सत्याग्रहीको इस परिमित भोगसे भी बचना चाहिये क्योंकि वंशविस्तारकी इच्छा उसे हो नहीं सकती। विवाहित मनुष्य भी इस प्रकार पूर्ण ब्रह्मचारी रह सकता है। यहां इस विषयका बहुत विवेचन नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्धमें कितने ही प्रश्न हैं—विवाहित अपनी

उसका एकाएक सामना हो जाता है और आत्मारक्षाके लिये वह अपनी लाठी उठाता है। उसे मालूम हो जाता है कि जिस निर्भयताका मुझे घमण्ड था वह मुझमें है ही नहीं। उसी क्षण वह लाठी नीचे रख देता है और भयसे स्वतन्त्र हो जाता है।

अठारहवां परिच्छेद

शिक्षा

पाठक—अबतक इतना वार्तालाप हुआ पर कहीं आपने शिक्षाकी आवश्यकता नहीं बतलायी। हमलोगोंमें यह आम शिकायत है कि शिक्षाका प्रचार नहीं है। देशमें अब अनिवार्य शिक्षाका आन्दोलन हो रहा है। महाराज गायकवाड़ने अपने राज्यमें अनिवार्य शिक्षा जारी की है। सबकी आंखें उस तरफ लगी हुई हैं। इसके लिये महाराजका हमलोग कल्याण मनाते हैं। यह सब उद्योग क्या बिलकुल व्यर्थ है?

संपादक—यदि हम लोग अपनी सभ्यताको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं तो दुःखके साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि जिस उद्योगका आपने वर्णन किया उसका बहुतसा अंश बिलकुल निरर्थक है। महाराजका उद्देश्य और उन लोगोंका उद्देश्य जो इस सम्बन्धमें उद्योग कर रहे हैं, अत्यन्त पवित्र है और इसके लिये हम भी उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु इस उद्योगका जो परिणाम होनेवाला है उसे अपने सामनेसे हटा नहीं सकते।

प्रकृतिसे ही मनुष्यके हृदयमें एक ऐसी शक्ति है जो निरन्तर आनेवाली विपत्ति और कठिनाईको दूर कर देती है। जो लोग देशसेवा करना नहीं चाहते उनके लिये भी ये गुण साधने योग्य हैं। यह बात भी ध्यानमें रहे कि जो लोग शस्त्रोंसे काम लेनेका अभ्यास करना चाहते हैं उन्हें भी इन गुणोंका थोड़ा बहुत अभ्यास करना ही पड़ता है। हर कोई इच्छामात्रसे योद्धा नहीं हो जाता। योद्धा होनेकी इच्छा करनेवालेको ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ता है और निर्धनता अंगीकार करनी पड़ती है। जिसमें निर्भयता न हो वह योद्धा ही नहीं हो सकता। लोग यह कह सकते हैं कि योद्धाको सत्यवादी बननेकी आवश्यकता नहीं पर सच्ची निर्भयता जहां होती है वहां सचाई भी रहती ही है। जब कोई मनुष्य सत्यसे च्युत होता है तो किसी न किसी प्रकारके भयसे ही होता है। इसलिये उक्त चार गुणोंसे कोई भयभीत न हो। यहाँ यह भी ध्यानमें रखने योग्य बात है कि भौतिक बलवाले मनुष्यको और भी कई निरर्थक गुणोंकी आवश्यकता होती है जिनका सत्याग्रहीको कुछ काम नहीं पड़ता। और यह भी आप जान लेंगे कि हथियारवाले मनुष्यको जिस अतिरिक्त प्रयत्नकी आवश्यकता होती है वह निर्भयताके अभावके कारणसे ही होती है। यदि वह भयकी मूर्ति ही हो तो शस्त्र उसी क्षण उसके हाथसे गिर जायगा। उसके सहारेकी उसे आवश्यकता ही क्या है? जो मनुष्य द्वेषसे रहित है उसे शस्त्रकी आवश्यकता नहीं होती। एक आदमी लाठी लिये हुए है और शेरके साथ

उसका एकाएक सामना हो जाता है और आत्मारक्षाके लिये वह अपनी लाठी उठाता है। उसे मालूम हो जाता है कि जिस निर्भयताका मुझे घमण्ड था वह मुझमें है ही नहीं। उसी क्षण वह लाठी नीचे रख देता है और भयसे स्वतन्त्र हो जाता है।

अठारहवां परिच्छेद

शिक्षा

पाठक—अबतक इतना वार्तालाप हुआ पर कहीं आपने शिक्षाकी आवश्यकता नहीं बतलायी। हमलोगोंमें यह आम शिकायत है कि शिक्षाका प्रचार नहीं है। देशमें अब अनिवार्य शिक्षाका अनदोलन हो रहा है। महाराज गायकवाड़ने अपने राज्यमें अनिवार्य शिक्षा जारी की है। सबकी आंखें उस तरफ लगी हुई हैं। इसके लिये महाराजका हमलोग कल्याण मनाते हैं। यह सब उद्योग क्या बिलकुल व्यर्थ है?

संपादक—यदि हम लोग अपनी सभ्यताको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं तो दुःखके साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि जिस उद्योगका आपने वर्णन किया उसका बहुतसा अंश बिलकुल निरर्थक है। महाराजका उद्देश्य और उन लोगोंका उद्देश्य जो इस सम्बन्धमें उद्योग कर रहे हैं, अत्यन्त पवित्र है और इसके लिये हम भी उनकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु इस उद्योगका जो परिणाम होनेवाला है उसे अपने सामनेसे हटा नहीं सकते।

अब उच्च शिक्षाका विचार कीजिये। मैंने भूगोल, ज्योतिष, बीजगणित, रेखागणित आदि पढ़ा है। इससे क्या हुआ? इससे मेरा अथवा मेरे पड़ोसियोंका क्या लाभ हुआ? इन विषयोंको मैंने किसलिये पढ़ा? प्रोफेसर हक्सलेने शिक्षाकी यों व्याख्या की है—"जिस मनुष्यको बालपनमें ऐसी शिक्षा मिली हो कि जिससे उसका शरीर उसकी इच्छाकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर हो और उसके करने योग्य सब काम वह स्वाभाविक रूपसे तथा आनन्दके साथ करता हो, जिसकी बुद्धि स्वच्छ, स्थिर और सार-असार समझनेवाली हो,—उसके सब पुर्जे ठिकानेसे काम करनेवाले हों— ··· ·······जिसके मनमें प्रकृतिके सत्‌सिद्धान्तोंके ज्ञानका खज़ाना हो ··· ·····जिसके मनोविकार इच्छाशक्तिके अधीन और विवेकबुद्धिके सेवक हों ·· ········ जिसने बुराई मात्रसे घृणा करना और अपने भाइयोंको अपने ही समान समझना सीखा हो उसीको मैं सत्‌शिक्षासम्पन्न समझता हूं। मेरी दृष्टिमें उसीने सत्‌शिक्षा पायी है, और किसीने नहीं; क्योंकि प्रकृतिके सुरमें उसका सुर मिला हुआ है। वह प्रकृतिसे और प्रकृति उससे पूरा लाभ उठावेगी।"

यदि यही वास्तविक शिक्षा है तो जोर देकर मुझे यह कहना पड़ता है कि जिन शास्त्रोंके नाम मैंने अभी गिनाये, मुझे अपनी इन्द्रियोंको वश करनेमें उनका कुछ भी काम न पड़ा। इसलिये आप आरंभिक शिक्षा लीजिये या उच्च शिक्षा, मुख्य उद्देश्यके लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इससे मनुष्यमें

शिक्षाका अर्थ क्या है? यदि इसका अर्थ केवल अक्षर-ज्ञान कराना है तो यह एक प्रकारका शस्त्र है, और शस्त्रका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। जिस शस्त्रसे बीमार अच्छा किया जा सकता है उसी शस्त्रसे उसकी जान भी ली जा सकती है। यही बात अक्षरोंके ज्ञानकी भी है। हम रोज ही देख रहे हैं कि बहुतसे आदमी इसका दुरुपयोग करते हैं और बहुत थोड़े आदमी सदुपयोग, और यदि यह बात सच है तो इससे लाभ होनेकी अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है।

शिक्षाका साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान ही है। बालकोंको लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखलानेका नाम आरंभिक शिक्षा है। किसान ईमानके साथ अपनी रोटी कमाता है। संसारका साधारण ज्ञान उसे रहता है। वह यह जानता है कि अपने मातापिता, पत्नीपुत्र और ग्राम बन्धुओंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। नीतिमत्ताके नियम वह जानता और पालता है। पर वह अपना नाम नहीं लिख सकता। उसे आप अक्षरोंका ज्ञान कराके क्या देना चाहते हैं? इससे क्या जरा भी उसके सुखकी वृद्धि होगी? क्या आप उसे अपनी कुटि और अपने भाग्यसे असन्तुष्ट कराना चाहते हैं? और यदि यही आप चाहते हों तौभी इसके लिये ऐसी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य विचारपरंपराके प्रवाहमें प्रवाहित होकर विना समझे बूझे हम लोगोंने यह मान लिया है कि सर्व साधारणको इस प्रकारकी शिक्षा दी जानी चाहिये।

इसका स्थान है वहां इसका उपयोग भी है, और इसका स्थान वहीं है जहां हम अपनी इन्द्रियोंको वसमें ला चुके हों और अपनी नीतिमत्ताकी नींव सुदृढ़ कर चुके हों। इतना करनेके पश्चात् यदि यह मालूम पड़े कि यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये तो उससे हमारा लाभ हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि इस शिक्षाको अनिवार्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारी प्राचीन शिक्षापद्धति हमारे लिये काफ़ी है। उसमें चरित्रगठन सबसे पहले आता है, और यही प्राथमिक शिक्षा है। इस नींवपर उठी हुई अट्टालिका चिरस्थायी होगी।

पाठक—तब आपके कहनेका यह मतलब मैं समझूं कि स्वराज्य पानेके लिये अंगरेजी शिक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है?

संपादक—मेरा उत्तर "हां" भी है और "नहीं" भी। करोड़ों अधिवासियोंको अंगरेजी शिक्षा देना उन्हें गुलाम बनाना है। मेकालेने शिक्षाकी जो नींव दी उसने हमें गुलाम बनाया है। मैं यह नहीं कहता कि मेकालेकी ऐसी ही इच्छा थी। इच्छा न हो, पर परिणाम ऐसा हुआ है। क्या यह शोककी बात नहीं है कि हमें स्वराज्यकी चर्चा एक विदेशी भाषामें करनी पड़े?

यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि जिन पद्धतियोंको यूरोपियनोंने चलाकर अब त्याग दिया है वे अभीतक हम लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके यहांके विद्वान बराबर परिवर्तन करते रहते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनका फेंका हुआ जूठा ही स्वीकार किया करते हैं। वे लोग अपना अपना पद ऊंचा करनेके

मनुष्यत्व नहीं आता। इससे कर्तव्यपालनकी शिक्षा नहीं मिलती।

पाठक—यदि यह बात है तो मैं आपसे एक दूसरा प्रश्न करता हूं। ये सब बातें आप जो बतला रहे हैं सो किसके सहारे? यदि आपको उच्च शिक्षा न मिली होती तो आपने इतनी बातें जो बतलायीं सो कैसे बतलाते?

संपादक—तुमने बहुत अच्छा कहा। पर मेरा उत्तर सरल है—यदि मुझे उच्च या निम्न शिक्षा न मिली होती तो मैं जरा भी यह नहीं समझता कि मेरा जीवन नष्ट हुआ होता। और न मैं यही ख्याल करता हूं कि बातें करनेसे ही मैं कोई उपकार कर रहा हूं। पर मैं सेवा करना अवश्य चाहता हूं और इसके लिये, मुझे जो शिक्षा मिली है उसका मैं उपयोग करता हूं। और यद्यपि मैं इस शिक्षाका सदुपयोग कर रहा हूं तौभी उससे सर्व साधारणका लाभ नहीं हो रहा है, आप जैसोंके लिये ही मैं इसका उपयोग कर रहा हूं, और इसीसे मेरे कथनका समर्थन होता है। हम और आप दोनों कुशिक्षाके चक्रमें पड़े हुए हैं, मैं उसके दुष्परिणामोंसे अब अपनेको स्वतंत्र समझता हूं और अपने अनुभवसे आपको भी बचाना चाहता हूं, और इसलिये इस शिक्षाको असली रूपमें आपके सामने रख रहा हूं।

इसके अतिरिक्त, मैंने यह भी नहीं कहा है कि अक्षरज्ञान किसी भी अवस्थामें इष्ट नहीं। मैंने केवल यही दिखलाया है कि ह सारसर्वस्व नहीं है। यह हमारी कामधेनू नहीं है। जहां

इसका स्थान है वहां इसका उपयोग भी है, और इसका स्थान वहीं है जहां हम अपनी इन्द्रियोंको वसमें ला चुके हों और अपनी नीतिमत्ताकी नींव सुदृढ़ कर चुके हों। इतना करनेके पश्चात् यदि यह मालूम पड़े कि यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये तो उससे हमारा लाभ हो सकता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि इस शिक्षाको अनिवार्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमारी प्राचीन शिक्षापद्धति हमारे लिये काफ़ी है। उसमें चरित्रगठन सबसे पहले आता है, और यही प्राथमिक शिक्षा है। इस नींवपर उठी हुई अट्टालिका चिरस्थायी होगी।

पाठक—तब आपके कहनेका यह मतलब मैं समझूं कि स्वराज्य पानेके लिये अंगरेजी शिक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है?

संपादक—मेरा उत्तर "हां" भी है और "नहीं" भी। करोड़ों अधिवासियोंको अंगरेजी शिक्षा देना उन्हें गुलाम बनाना है। मेकालेने शिक्षाकी जो नींव दी उसने हमें गुलाम बनाया है। मैं यह नहीं कहता कि मेकालेकी ऐसी ही इच्छा थी। इच्छा न हो, पर परिणाम ऐसा हुआ है। क्या यह शोककी बात नहीं है कि हमें स्वराज्यकी चर्चा एक विदेशी भाषामें करनी पड़े?

यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि जिन पद्धतियोंको यूरोपियनोंने चलाकर अब त्याग दिया है वे अभीतक हम लोगोंमें प्रचलित हैं। उनके यहांके विद्वान बराबर परिवर्तन करते रहते हैं। हमलोग अज्ञानवश उनका फेंका हुआ जूठा ही स्वीकार किया करते हैं। वे लोग अपना अपना पद ऊंचा करनेके

उद्योगमें रहते हैं। वेल्श इंगलैंडका एक छोटासा हिस्सा है। वेल्शके लोग अपने यहां वेल्श भाषाका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। अंगरेज हिसाबनवीस (चैन्सेलर) मि० लायड जार्ज वेल्श बालकोंसे वेल्श भाषा बोलवानेके उद्योगमें आगे बढ़ कर काम कर रहे हैं। और हम लोगोंकी दशा क्या है? हम आपसमें टूटी फूटी अंगरेजीमें पत्रव्यवहार करते हैं, भाषाके दोषोंसे हमारे एम० ए० भी नहीं बचते ; हमारे उच्चतम विचार अंगरेजी भाषाके द्वारा प्रकट होते हैं; हमारे कांग्रेसकी कार्रवाई अंरेगजीमें होती है; हमारे सबसे अच्छे समाचारपत्र अंगरेजीमें निकलते हैं। यदि बहुत दिनोंतक यही हालत रही तो मैं सच बतलाता हूं कि हमारे सन्तान हमारा तिरस्कार करेंगे, हमें कोसेंगे।

यह ध्यानमें रहे कि अंगरेजी शिक्षा पाकर हम लोगोंने अपने राष्ट्रको दासत्वके पंकमें धंसाया है। धूर्तता, अत्याचार आदिकी वृद्धि हुई है। अंगरेज़ी जाननेवाले हिन्दुस्थानियोंको लोगोंको धोखा देते, डराते, धमकाते कभी सोच संकोच नहीं होता। अब यदि हम लोग उनके लिये कुछ कर रहे हैं तो इतनाही कर रहे हैं कि हमारे ऊपर उनका जो बड़ा भारी ऋण हैं उसे थोड़ा चुका रहे हैं।

क्या यह बात दिलको चोट पहुंचानेवाली नहीं है कि मुझे यदि अदालत जानेका काम पड़े तो अंगरेजी भाषाकी शरण लेनी पड़े; मैं बैरिस्टर बनूं तो अपनी मातृभाषाको त्याग दूं और कोई दूसरा व्यक्ति मेरी भाषासे उलथा करके मुझे समझावे? क्या यह बिलकुल बेबुनियाद काम नहीं है? क्या यह गुलामीकी निशानी

नहीं है? इसके लिये दोष मैं किसको दूं—अंगरेजोंको या अपनेको? हम अंगरेजी जाननेवाले लोगोंने हिन्दुस्थानको गुलाम बनाया है। यह पाप हम लोगोंके सिरपर है, अंगरेजोंके नहीं।

मैं यह कह चुका हूं कि आपके अन्तिम प्रश्नका मेरा उत्तर "हां" और "नहीं" दोनों है। "हां" कैसे वह मैं बतला चुका। अब "नहीं" कैसे सो बतलाता हूं।

हमलोग सभ्यताके रोगसे इतने ग्रस्त हो गये हैं कि अंगरेजी शिक्षाके बिना हमारा कामही नहीं चलता। जो लोग अंगरेजी शिक्षा पा चुके हैं वे जहां आवश्यकता है वहां उससे अच्छा काम ले सकते हैं। अंगरेजोंसे अथवा अपने लोगोंसे ही व्यवहार करनेमें जहां अंगरेजी भाषाके बिना काम न चले वहां तथा यह जाननेके लिये कि स्वयं अंगरेज ही अपनी सभ्यतासे कितने असन्तुष्ट हो गये हैं, हमलोग उस भाषाको सीख सकते हैं या उससे काम ले सकते हैं। जिन लोगोंने अंगरेजी पढ़ ली है उन्हें अपनी सन्तानोंको मातृभाषाके द्वारा चरित्रकी शिक्षा देनी होगी और उन्हें अन्य भारतीय भाषा सिखलानी होगी, जब वे बड़े हो जायं तब वे चाहें तो अंगरेजी सीख सकते हैं पर इसमें भी अन्तिम उद्देश्य यही रहना चाहिये कि इस भाषाकी कोई आवश्यकता न रहे। इसके द्वारा धनोपार्जन करनेका उद्देश्य अच्छा नहीं है। इस हदतक अंगरेजी पढ़नेमें भी हमें यह सोचना होगा कि इसके द्वारा हमें क्या सीखना चाहिये और क्या नहीं। यह जानना आवश्यक होगा कि हमें किन किन शास्त्रों या विज्ञानोंका ज्ञान

प्राप्त करना चाहिये। थोड़ा विचार करनेसे ही यह मालूम हो जायगा कि हम लोग ज्यों ही डिग्रियोंको परवा करना छोड़ देंगे त्योंही हमारे शासक अपने सिर खुजलाने लगेंगे।

पाठक—तव किस प्रकारकी शिक्षा हमें देनी चाहिये ?

संपादक—इस विषयका विचार तो अवतककी वातोंमें आही गया है पर और थोड़ा विचार करें। मैं समझता हूं, हम लोगोंको अपनी सव भाषाओंकी उन्नति करनी होगी। इन भाषाओंके द्वारा किन किन विषयोंकी शिक्षा हो इसपर विस्तार करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है। अंगरेजी भाषामें जो अच्छी अच्छी पुस्तकें हैं उनका अनुवाद देशी भाषाओंमें हमें कर डालना चाहिये। वहुतसे शास्त्र पढ़नेका हौसला छोड़ देना चाहिये। धार्मिक अर्थात् नैतिक शिक्षाको पहला स्थान मिलना चाहिये। अपने अपने प्रान्तकी भाषाके अतिरिक्त प्रत्येक सुसंस्कृत भारतवासीको हिन्दू हो तो संस्कृत, मुसलमान हो तो अरवी, और पारसी हो तो फारसी जाननी चाहिये ; और सवको हिन्दी जाननी चाहिये। कुछ हिन्दुओंको आरवी और फारसी जाननी चाहिये ; कुछ मुसलमानों और पारसियोंको संस्कृत जाननी चाहिये। उत्तर और पश्चिमके प्रान्तोंमें रहनेवाले कई भारतवासियोंको तामील सीख लेनी चाहिये। हिन्दुस्थानकी सार्वत्रिक भाषा हिन्दी होनी चाहिये, और लिपि चाहे कोई नागरी लिखे चाहे उर्दू। हिन्दू मुसलमानोंका परस्परसम्वन्ध घनिष्ट हो इसके लिये दोनों लिपियोंको जानना आवश्यक है। और यदि हम लोग इतना कर सकें

तो थोड़ेही कालमें अंगरेजी मैदान छोड़ भाग जायगी। हम गुलामोंके लिये यह सब आवश्यक है। हमारी गुलामीके कारण राष्ट्र गुलाम हुआ है और हमारे स्वतंत्र होनेसे राष्ट्र स्वतंत्र हो जायगा।

पाठक—धार्मिक शिक्षाका प्रश्न बड़ा विकट है।

संपादक—विकट हुआ करे, उसके बिना काम ही न चलेगा। हिन्दुस्थान कभी ईश्वरहीन न होगा। घोर नास्तिकता इस देशमें चल नहीं सकती। काम निश्चय ही बड़ा कठिन है। धार्मिक शिक्षाके सम्बन्धमें जब मैं सोचता हूं तो मेरा सिर घूम जाता है। हमारे धर्मगुरु धूर्त और स्वार्थी हैं, उनके पास जाकर उन्हें समझाना होगा। मुल्ले, दस्तूर और ब्राह्मण कुंजी अपने हाथमें रखे हुए हैं, पर यदि वे न मानेंगे तो अंगरेजी शिक्षासे जो शक्ति हम लोगोंने पायी है उसे धार्मिक शिक्षामें लगाना होगा। यह कोई कठिन काम नहीं है। समुद्रका किनारा ही केवल अपवित्र हुआ है और किनारेके लोगोंको ही शुद्ध करना है। इस कोटिमें हमलोग हैं और ऐसे हमलोग स्वयं भी अपनेको शुद्ध कर सकते हैं। हमारे अन्य जो करोड़ों भाई हैं उनके सम्बन्धमें मैं यह नहीं कर रहा हूं। हिन्दुस्थानको फिरसे प्राचीन गौरवसे युक्त करनेके लिये हमें प्राचीनकी ओर लौट जाना पड़ेगा। हमारी अपनी सभ्यताके अन्दर स्वभावतः ही उन्नति, अवनति, सुधार, और प्रतिकार होंगे, पर एक काम करना होगा। वह यह है कि पाश्चात्य सभ्यताको निकाल दो। बाकी सब बातें आपही हो जायंगी।

उन्नीसवां परिच्छेद

यांत्रिक सामग्री

पाठक—जब आप पश्चिमी सभ्यताको ही निकाल बाहर करनेके लिये कहते हैं तब आप यह भी जरूर कहेंगे कि यंत्रादिकी हम लोगोंको कोई आवश्यकता नहीं।

संपादक—यह बात छेड़ कर आपने मेरे जखमकी पट्टी खोल दी। जब मैंने दत्त महाशयका "हिन्दुस्थानका साम्पत्तिक इतिहास" पढ़ा तो मैं रोने लगा; और उसका स्मरण करता हूं तो फिरसे छाती दहल जाती है। यंत्रसामग्रीने ही तो हिन्दुस्थानको कंगाल कर डाला है। मैंचेस्टरकी बदौलत ही तो हिन्दुस्थानकी कारीगरीका सत्यानास हुआ।

पर मैं भूलता हूं। मैंचेस्टरको क्यों दोष दूं? मैंचेस्टरका कपड़ा तो हम लोगोंने पहना और इसलिये मैंचेस्टरने उसे बुना। जब मैंने बंगालकी बहादुरीका हाल पढ़ा तो मैं बहुत खुश हुआ। उस प्रदेशमें कपड़ेकी मिलें नहीं हैं। इसलिये ताना बाना फिरसे वहां दिखायी देने लगा। यह सच है कि बंगाल बंबईके कल कारखानोंको बढ़ावा देता है। यदि बंगालने कलके बने यावत मालका बहिष्कार किया होता तो बहुत अच्छा होता।

कलें यूरोपको उजाड़ रही हैं। तबाही अंगरेजोंका द्वार खट-

घटा रही है। यांत्रिक सामग्री ही आधुनिक सभ्यताका मुख्य चिह्न है। यह एक बड़ा भारी पाप है।

बंबईके कल कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूर गुलाम हो गये हैं। मिलोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंकी अवस्था हृदयको दहलानेवाली है। जब मिलें नहीं थी तब इन स्त्रियोंको भूखों न मरना पड़ता था। यदि कल पुर्जोंका शौक हमारे देशमें बढ़ा तो यह देश दुखी हो जायगा। हम लोग मैंचेस्टरका दिखौआ कपड़ा बल्कि पहन लें, यह अच्छा; पर हिन्दुस्थानमें मिलोंकी संख्याका बढ़ना अच्छा नहीं। मैंचेस्टरका कपड़ा पहननेसे हम लोगोंका सिर्फ रुपया बरबाद होगा, पर हिन्दुस्थानमें मैंचेस्टरकी नकल उतारनेसे हम लोग अपना खून देकर रुपया बचा लेंगे, क्योंकि हमारा नैतिक चरित्र ही उससे भ्रष्ट हो जायगा। इस कथनके प्रमाणमें मैं उन मजदूरोंको ही गवाहके तौरपर पेश करता हूं जो मिलोंमें काम कर रहे हैं। और जिन लोगोंने कल कारखानोंसे धनराशि एकत्र कर ली है वे वैसेही होंगे जैसे और धनी हैं। हिन्दुस्थानमें कोई राकफेलर पैदा हो तो यह समझना नादानी है कि वह अमेरिकाके राकफेलरसे अच्छा होगा। निर्धन हिन्दुस्थान स्वतंत्र हो सकता है पर चरित्रभ्रष्ट होकर धनी हुए हिन्दुस्थानके लिये स्वतंत्र होना बड़ी टेढ़ी खीर है। यह बात सबको माननी पड़ेगी कि धनी लोग ही ब्रिटिश राजको बनाये हुए हैं; ब्रिटिश राजके बने रहनेमें ही उनका स्वार्थ है। धन मनुष्यको असहाय बना देता है। व्यभिचार

भी ऐसा ही नाशकारी है। दोनों विष हैं। सांपके विषसे भी यह अधिक विषैला है। कारण, सांपका विष केवल शरीर नष्ट करता है और यह विष तो तन, मन और आत्मा तीनोंका नाश करता है। इसलिये कलकारखानोंकी उन्नतिमें प्रसन्न होनेकी कोई बात नहीं है।

पाठक—तो जितने कल कारखाने हैं, सब बन्द कर देने होंगे?

संपादक—यह कठिन है। जो बात जम चुकी उसे उखाड़ना कोई आसान काम नहीं है। इसीलिये कहते हैं कि "अनारम्भो हि प्रथम बुद्धिलक्षणम्"। मिल-मालिकोंको हम बुरा नहीं कह सकते; उनपर केवल दया आती है। वे अपने कारखाने बन्द कर दें इस बातकी आशा करना वृथा है; हम उनसे इतनीही प्रार्थना कर सकते हैं कि आप और कारखाने न खोलें। यदि वे सज्जन होंगे तो धीरे धीरे अपना कारबार बन्द कर देंगे। वे प्राचीन और शुद्ध करघे घर घरमें रख सकते हैं और उनके द्वारा जो कपड़ा बुना जाय उसे खरीद सकते हैं। मिलोंके मालिक ऐसा करें या न करें, लोग कलसे तैयार हुआ माल लेना छोड़ सकते हैं।

पाठक—आपने अबतक कलसे तैयार हुए कपड़ेके बारेमें कहा है; पर और भी बहुतसी ऐसी वस्तुएं हैं जो कलसे तैयार होती हैं। ऐसी चीजें या तो बाहरसे मंगानी पड़ती हैं या यहां उनके कल कारखाने खोलने पड़ते हैं।

सम्पादक—सच है, हमारे देवता भी जर्मनीसे बनकर आते

है, फिर दियासलाई, आलपीन और कांचके सामानकी बात ही क्या कहिये ! मैं एकही बात कहूंगा। ये चीजें जबतक यहां नहीं आयी थीं तबतक हिन्दुस्थान क्या करता था ? जो करता हो, वही आज भी करे। जबतक बिना कलके हमलोग आलपीन नहीं तैयार कर सकते तबतक उसके बिनाही काम चलायें। कांचकी चमकदार चिमनियोंसे कुछ काम नहीं है, घरकी कपाससे पहलेकी तरह बत्तियां बना लिया करें और लैंपके स्थानमें मिट्टीके दीपटसे काम लें। ऐसा करनेसे हमारे नेत्रोंकी रक्षा होगी, रुपया भी बचेगा, स्वदेशीकी सहायता होगी और इस प्रकार स्वराज्य प्राप्त होगा।

यह कोई ख्याल नहीं कर सकता कि सब मनुष्य ये सभी बातें एक साथ ही करने लग जायंगे, या कुछ लोग कलसे तैयार होनेवाले बाकत मालसे एकदम नाता तोड़ देंगे। पर, यदि मनमें सुविचार हो तो यह पता लग जायगा कि हम क्या क्या छोड़ सकते हैं और धीरे धीरे उसे छोड़ देंगे। कुछ लोगोंकी देखादेखी और लोग भी करने लग जायंगे और इस तरह इसका प्रचार बढ़ता जायगा। "यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः"। बात कुछ कठिन नहीं है। और लोगोंकी राह न देखकर हम आपको ही यह काम शुरू कर देना चाहिये। जो लोग यह काम न करेंगे उन्हींकी हानि होगी, और जो लोग सब समझ बूझकर भी इसे न करेंगे वे कायर कहलावेंगे।

पाठक—अच्छा तो ट्रामगाड़ियों और बिजलीका क्या होगा ?

सम्पादक—सब रामायण पढ़ गये, सीता कौन थी नहीं मालूम ! यदि रेलवेसे काम नहीं लेना है तो ट्रामसे क्या काम ? कल सांपके बिलके समान है जिसमें एक सांप भी हो सकता है और सौ भी। जहां जहां कलें हैं वहां वहां बड़े शहर हैं, और केवल वहीं बिजलीकी रोशनी होती है। अंगरेज़ी देहातोंमें ये सब बातें नहीं हैं। सच्चे वैद्य आपको बतला देंगे कि जहां आवागमनके कृत्रिम साधनोंकी वृद्धि होती है वहां लोगोंका स्वास्थ्य नष्ट होता है। मुझे स्मरण है, एकबार यूरोपके एक नगरमें रुपया बहुत कम हो गया और इससे ट्रामगाड़ियों, वकीलों और डाक्टरोंकी आय कम हो गयी तो बीमारी भी कम हो गयी। कलोंसे एक भी लाभ देखनेमें नहीं आता। बुराइयां इतनी हैं कि कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं।

पाठक—आप जो कुछ कह रहे हैं वह कलसे ही छापा जायगा, यह बुरा है या अच्छा ?

सम्पादक—यह उसी ढंगका दृष्टान्त है कि "विषस्य विषमौषधम्"। इसलिये यह भी अच्छा नहीं है। कलें हमसे मानों यही कह रही हैं, "सावधान हो जाओ और हमसे बचे रहो। तुम्हारा कुछ भी उपकार न होगा, और छापेसे जो भला वह उन्हींका होगा जो कलोंके मोहमें फंसे हुए हैं।" इस-मुख्य बात न भूलो। यह जान लेना आवश्यक है कि यंत्र- अच्छी नहीं। यह जाननेसे हम लोग धीरे धीरे इससे हो सकेंगे। प्रकृतिने कोई ऐसा पथ निर्माण नहीं किया

है कि जिससे हम लोग एकदम अपने लक्ष्यके समीप पहुंच जायँ। यदि यंत्रसामग्रीको शुभ समझकर उसका स्वागत करनेके बदले हम लोग उसे अशुभ समझने लग जायंगे तो अन्तमें वह सदाके लिये विदा हो जायगी।

बीसवां परिच्छेद

उपसंहार

पाठक—आपके विचारोंसे यह पता लगा कि आप एक तीसरा दल कायम करना चाहते हैं। आप नरम भी नहीं हैं और गरम भी नहीं।

संपादक—यह आपकी भूल है। मैं एक तीसरा दल बनानेकी फिक्रमें नहीं हूं। सबके विचार एकसे नहीं होते। यह कोई नहीं कह सकता कि सब माडरेटोंके एकसे हो विचार हैं। और जो लोग केवल सेवा ही करना चाहते हैं वे दल बनाकर उसी दलके अन्दर कैसे रह सकते हैं? मैं माडरेटोंकी भी सेवा करना चाहता हूं और एक्स्ट्रिमिस्टोंकी भी। जहां दोनोंसे भिन्न मेरी राय होगी वहां मैं अदबके साथ अपनी सफाई दे दूंगा, और सेवा करता रहूंगा।

पाठक—तब, दोनों दलोंसे आप क्या कहेंगे?

संपादक—एक्स्ट्रिमिस्टोंसे मैं यह कहूंगा, "मैं जानता हूं कि

आपलोग हिन्दुस्थानके लिये स्वराज्य चाहते हैं। यह स्वराज्य मांगनेसे ही न मिल जायगा। हर किसीको अपने पराक्रमसे वह लेना होगा। दूसरोंके द्वारा जो लाभ होगा वह स्वराज्य नहीं, पर-राज्य होगा; इसलिये यदि अंगरेजोंको आप लोगोंने निकाल वाहर किया तो आपका यह कहना अनुचित होगा कि हम लोगोंने स्वराज्य पा लिया। स्वराज्यका यथार्थ स्वरूप मैं दिखला चुका हूं। शस्त्रके बलसे यह कभी प्राप्त नहीं हो सकता। पाशविक बल भारतभूमिकी प्रकृतिके ही प्रतिकूल है। इसलिये आप लोगोंको केवल आत्मिक बलके भरोसे काम करना होगा। यह ख्याल बिलकुल छोड़ दीजिये कि अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये कभी शस्त्रबलसे काम लेना भी आवश्यक होगा।"

माडरेटोंसे मैं यह कहूंगा, "केवल प्रार्थना करना, गिड़गिड़ाना नीचे गिरना है; ऐसा करनेसे हमलोग अपनी निकृष्टता स्वीकार करते हैं। यह कहना कि ब्रिटिश राजके बिना हमारा काम चल नहीं सकता, ईश्वरकी सत्ताको ही लगभग न मानना है। एक ईश्वरको छोड़ और कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसके बिना काम न चल सके। इसके अतिरिक्त यह एक मोटी बात है कि इस समय अंगरेजोंका यहां रहना आवश्यक है यह कहना उन्हें अपने सर चढ़ाना है।

"यदि अंगरेज हिन्दुस्थानसे डेराडंडा उठाकर चल दें तो कोई यह न ख्याल करे कि यह भूमि विधवा हो जायगी। यह

कि अंगरेजोंके रहनेसे जिन लोगोंको जबर्दस्ती दबकर

रहना पड़ता है वे उनके चले जानेपर लड़ने लग जायं। भड़कावको दवा रखनेसे कोई लाम नहीं हो सकता; उसे निकल जानेका रास्ता मिलना ही चाहिये। इसलिये यदि इससे पहले कि हम लोग शान्तिसे रहें, आपसमें लड़ना आवश्यक हो तो अच्छी बात है। आपसके झगड़ेमें दुर्बलकी रक्षा करनेके लिये तीसरेके कुद पड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसी "रक्षा"ने ही तो हम लोगोंको निर्वीर्य कर डाला है। रक्षा दुर्बलको और दुर्बल बनाती है। इस बातको जबतक हमलोग न समझ लेंगे तबतक हमलोगोंको स्वराज्य नहीं मिल सकता। एक अंगरेज पादरीके विचारको मैं अपने शब्दोंमें यों प्रकट करता हूं कि सुव्यवस्थित परराज्यकी अपेक्षा स्वराज्यकी अराजकता अच्छी। परन्तु मेरी कल्पनाके अनुसार उस विद्वान पादरीके स्वराज्यका अर्थ भारतीय स्वराज्यके सम्बन्धमें भिन्न प्रकारका है। हम लोगोंको यह सीखना है और दूसरोंको सिखलाना है कि हमलोग न अंगरेजो राजका अत्याचार चाहते हैं न हिन्दुस्थानी राजका।"

यदि इस विचारके साथ काम हो तो एक्स्ट्रिमिस्ट और माडरेट दोनों मिलकर काम कर सकते हैं। परस्परसे डरने या परस्परका अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है।

पाठक—अच्छा तो अंगरेजोंसे आप क्या कहेंगे?

संपादक—उनसे अदबके साथ मैं यही कहूंगा कि, "मैं मानता हूं कि आपलोग हमारे शासक हैं। इस बातकी बहस करना फजूल है कि आप हमारे ऊपर अपने शस्त्रके बलसे राज करते हैं

या हमारी सम्मतिसे। आप लोगोंके हमारे देशमें रहनेपर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु यद्यपि आपलोग शासक हैं तथापि नौकर बनकर ही आप लोगोंको रहना होगा। हम लोगोंका यह पद नहीं है कि जैसा आप कहें वैसा हम करें बल्कि आप लोगोंका यह कर्तव्य है कि जैसा हम चाहें वैसा आप किया करें। आप लोग इस देशसे जो धन खींच ले गये हैं उसे आप लोग रख छोड़िये, पर आगेसे ऐसा काम मत कीजिये। यदि आप लोग चाहें तो आपका यह काम होगा कि हिन्दुस्थानपर आप लोग पहरा दें। हम लोगोंसे व्यापारका लाभ उठानेकी बात अब छोड़ दीजिये। जिस सभ्यताके आप लोग पृष्ठपोषक हैं उस सभ्यताको हम लोग असभ्यता समझते हैं। हम लोग अपनी सभ्यताको आपकी सभ्यतासे बहुत श्रेष्ठ मानते हैं। यदि इस सत्यको आप लोग अच्छी तरह समझ लेंगे तो इसमें आपकी भलाई है, और यदि नहीं तो आप लोगोंकी ही कहावतके अनुसार, इस देशमें आप लोगोंको वैसे ही रहना होगा जैसे हम लोग रहते हैं। आप लोग कोई ऐसा काम न करें जो हमारे धर्मके विरुद्ध हो। आप लोग शासक हैं इसलिये हिन्दुओंके निमित्त आपका यह धर्म है कि गोमांस खाना छोड़ दें, और मुसलमानोंके लिये सूअरको हराम समझें। अबतक हम लोगोंने कुछ नहीं कहा क्योंकि हम लोग दबाये गये हैं, पर आप यह न समझें कि आपके व्यवहारसे हमारे दिलोंपर चोट नहीं पहुंची है। हम अपने भाव किसी क्षुद्र स्वार्थ या भयके कारण प्रकट नहीं कर रहे हैं

बल्कि अब साफ साफ कह देना हम लोगोंका कर्तव्य है। हम लोग आपके स्कूलों और अदालतोंको बिलकुल बेकार समझते हैं। हम लोग अपने प्राचीन विद्यालयों और न्यायालयोंका जीर्णोद्धार चाहते हैं। हिन्दुस्थानकी सामान्य भाषा अंगरेजी नहीं बल्कि हिन्दी है। इसलिये आप लोगोंको उसे सीखना चाहिये। हम लोग आपसे केवल अपनी राष्ट्रभाषाके द्वारा बात कर सकते हैं।

"आप लोग रेलवे और फौजके लिये बराबर खर्च किये जा रहे हैं यह अब हम नहीं सह सकते। न रेलवेकी कोई जरूरत है न फौजकी। रूससे आप भले ही डरते हों, हम लोग नहीं डरते। रूस जब चढ़ आवेगा तब हम लोग देख लेंगे। उस समय आप लोग यदि रहें तो हम आप मिलकर उसका स्वागत करेंगे। हमें किसी प्रकारके यूरोपियन कपड़ेकी जरूरत नहीं है। यहीं तैयार होनेवाली चीजोंसे हम लोग अपना काम चला लेंगे। आपको अपनी एक आंख मैंचेस्टरपर और दूसरी हिन्दुस्थानपर रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम आप मिलकर सभी काम कर सकते हैं जब हमारा आपका स्वार्थ एक हो।

"ये बातें आपको गुस्ताखीसे नहीं सुनायी गयी हैं। आपकी जंगी तैयारी बड़ी भारी है। आपकी नौशक्तिका कोई जोड़ नहीं है। आपके साधनके द्वारा ही यदि हम लोग आपसे लड़ना चाहें तो नहीं लड़ सकते, पर ऊपर जो बातें कही गयी हैं वे यदि आपको न मंजूर हों तो आप लोग हमारे ऊपर शासन अब नहीं कर सकते। आप चाहें तो हमारी बोटी बोटी काट डाल सकते

हैं। तोपके गोलोंसे आप हम लोगोंको उड़ा दे सकते हैं। यदि आप हमारी इच्छाके विरुद्ध काम करेंगे तो हमलोग आपकी मदद न करेंगे, और हम जानते हैं कि इसके विना आप लोग एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते।

"यह संभव है कि अधिकारमदसे उन्मत्त होकर आप इन सब बातोंपर हंस पड़ेंगे। हम लोग भी आपका भ्रम चाहे एकदम दूर न कर सकें, पर यदि हम लोगोंमें कुछ भी पुरुषार्थ होगा तो आप देख लेंगे कि आपका यह अधिकारमद आपका शत्रु है और हमारी दुःस्थितिके कारण आपका हंस पड़ना आपकी मन्दबुद्धिका लक्षण है। हमें विश्वास है कि आपका हृदय एक धर्मभीरू जातिके हृदयका अंश है। हम लोग जिस भूमिमें रहते हैं वह भूमि धर्मसम्प्रदायोंकी जननी है। हम आप यहां कैसे आ मिले यह विचार जाने दीजिये, पर इसमें सन्देह नहीं कि हम आप परस्परके सम्बन्धसे परस्परलाभ पहुंचा सकते हैं।

आप अंगरेज लोग जो हिन्दुस्थानमें आये हो, अंगरेज जातिके अच्छे नमूने नहीं हो और हम लोग भी जो आधे अंगरेज हो गये हैं, वास्तविक आर्यजातिके अच्छे नमूने नहीं हैं। आप लोगोंने यहां जो जो कुछ किया है वह सब यदि अंगरेज जातिको मालूम हो जाय तो वह आपकी अनेक बातोंका विरोध करेगी। सर्वसाधारण हिन्दुस्थानियोंके साथ आपका बहुत ही कम सम्बन्ध रहा। जिसे आप लोग अपनी सभ्यता समझते हैं उसे छोड़-

*यदि आप अपने ही धर्मग्रन्थ देखेंगे तो आपको मालूम होगा

कि हम लोग जो चाहते हैं वह न्याय है। हमारी शर्तें मंजूर करके ही आप लोग हिन्दुस्थानमें रह सकते हैं, और यदि इस तरह रहेंगे तो हम आपसे बहुतसी बातें सीख सकेंगे और आप भी हमसे बहुत कुछ सीख लेंगे। इस प्रकार परस्परका और संसारका उपकार हो सकता है। पर यह तभी हो सकता है जब हमारा आपका सम्बन्ध धर्मभूमिमें जड़ पकड़ ले।"

पाठक—राष्ट्रसे आप क्या कहेंगे?

संपादक—राष्ट्र आप किसे कहते हैं?

पाठक—यहां तो उसी राष्ट्रसे मतलब है जिसकी बात हम आप सोच रहे हैं, अर्थात् वे लोग जिनपर यूरोपकी सभ्यताका प्रभाव पड़ा हुआ है, और जो स्वराज्य पानेके लिये अधीर हो रहे हैं।

संपादक—इनसे मैं यह कहना चाहता हूं कि, "जिन भारतवासियोंमें सच्ची देशभक्ति होगी वही निडर होकर अंगरेजोंसे ये बातें कह सकेंगे, और सच्ची देशभक्ति उन्हींकी समझी जायगी जो अंतःकरणमें यह विश्वास रखते हैं कि भारतीय सभ्यता ही सर्वोत्तम है और यूरोपकी सभ्यता केवल दो दिनका खेल है। ऐसी नकली चमकवाली कई सभ्यताएं आयीं और गयीं और आगे भी उनका आना जाना लगा रहेगा। सच्ची देशभक्ति उन्हींकी समझी जायगी जो अपने आत्माका बल अनुभव करेंगे और पाशविक बलके सामने बिलैयादण्डवत न करेंगे और कभी किसी हालतमें स्वयं इस बलका प्रयोग भी न करेंगे। सच्ची

देशभक्ति उन्हींकी समझी जायगी जो वर्तमान दुःस्थितिसे बिल्कुल उकता गये हों और यह समझते हों कि जहरका प्याला हमलोग पी चुके, अब न पीयेंगे।"

यदि एक भी भारतवासी ऐसा होगा तो वह अंगरेजोंसे ऐसी बातें करेगा और अंगरेजोंको उसकी बातें सुन लेनी पड़ेंगी।

ये शर्तें शर्तें नहीं हैं, हमारे मनके दर्पण हैं। मांगनेसे कुछ भी न मिलेगा; हम जो चाहते हैं वह हमें ले लेना होगा और इसके लिये बल प्राप्त करना होगा; और वह बल उसीको प्राप्त होगा जो—

१. अंगरेजी भाषाका बहुत ही कम प्रयोग करे;

२. यदि वकील हो तो अपना पेशा छोड़दे और करघेपर काम करे;

३. यदि वकील हो तो अपने लोगों और अंगरेजोंको भी अपने ज्ञानसे बुद्धि दे;

४. यदि वकील हो तो लड़नेवाले दो फरीकोंके बीच दखल न दे बल्कि अदालतकी सीढ़ी चढ़ना छोड़ दे और अपने अनुभवसे दूसरोंको भी इसी रास्तेपर ले आवे;

५. यदि वकील हो तो जज बननेसे इन्कार करे क्योंकि उसे अपना पेशा ही छोड़ देना है;

६. यदि डाक्टर हो तो डाक्टरी छोड़ दे और यह समझ ले कि शरीरकी सेवा करनेके बदले उसे आत्माकी सेवा करनी चाहिये;

७. यदि डाकृर हो, चाहे वह किसी धर्मसंप्रदायको माननेवाला हो तो वह जान ले कि डाकृरीके यूरोपियन स्कूलोंमें जो भयंकर और क्रूर जीवहत्या होती है उसके द्वारा शरीर आराम करनेकी अपेक्षा शरीरका रोगी रहना ही अच्छा है;

८. डाकृर होनेपर भी वह करघेपर काम करे और यदि उसके पास रोगी आवें तो उनके रोगोंका कारण उन्हें बता दे और व्यर्थकी औषधियां दे कर उन्हें जर्जर करनेके बदले उस कारणको निकालनेकी सलाह दे; यदि संयोगवश रोगी मर भी गया तो संसार इससे दुखी न होगा, इस तरह वह यथार्थमें उसपर दया ही करेगा;

९. यदि धनी आदमी हो तो धनकी परवा न कर अपने मनकी बात कह दे और किसीसे न डरे;

१०. यदि धनी आदमी हो तो अपना रुपया करघोंका कारबार खोलनेमें लगावे और स्वयं करघोंके कपड़े पहन कर दूसरोंको भी वैसा करनेके लिये जोश दिलावे;

११. अपने अन्य भाईकी तरह वह समझे कि यह पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त और शोकका समय है;

१२. अपने अन्य भाईकी तरह वह जान ले कि अंगरेजोंको दोष देना व्यर्थ है, वे आये उसका कारण हम हैं और हमारी ही बदौलत वे यहां रहते हैं, और जब हम अपना सुधार आप कर लेंगे तब या तो वे यहांसे चले जायंगे या अपना स्वभाव बदल देंगे;

१३. औरोंकी तरह वह समझ ले कि गमीमें कोई भोग वि-

लाभ नहीं करता, और जबतक हम लोग इस गिरी हुई हालतमें हैं तबतक जेलमें रहना या निर्वासित होना ही अच्छा है;

१४. औरोंके साथ यह जाने कि यह समझना कि हम बचे रहेंगे तो लोकसेवा कर सकेंगे और जेलसे बचनेका यत्न करना अंधापन है;

१५. औरोंके साथ यह जाने कि बोलनेसे करना अच्छा; हमारी बुद्धिमें जो बात आती है उसीको ज्योंकी त्यों कहना और उसका फल भोगनेके लिये तैयार रहना ही हमारा कर्तव्य है और जब हम इस कर्तव्यका पालन करेंगे तभी हमारे कहनेका लोगोंपर असर पड़ेगा;

१६. औरोंके साथ यह जाने कि यूरोपकी सभ्यताका प्रचार कर हमने जो पाप किया है, जनमभरके लिये भी कालापानी मिले तौ भी उसका पूरा प्रायश्चित न होगा;

१७. औरोंके साथ यह जाने कि कोई राष्ट्र बिना दुःख उठाये नहीं उठता; शस्त्रास्त्रके युद्धमें भी आत्मबलिदान ही सच्ची कसौटी है, दूसरोंकी हत्या नहीं; सत्याग्रहके युद्धमें तो इसका विशेष ही प्राधान्य है;

१८. औरोंके साथ यह जाने कि यह कहना कि "अमुक काम जब और लोग करेंगे तब हमभी करेंगे", केवल बेगार टालना है; जिस कामको हम ठीक समझते हैं वह हमें करना चाहिये, जब दूसरे देखेंगे कि यह ठीक है तब वे भी करने लग जायंगे; किसी [illegible] स्वाद जब हमें मालूम होता है तब हम उसका भोग

करनेके लिये दूसरोंकी राह नहीं देखा करते; राष्ट्रकी सेवा और आत्मत्याग करनेमें एक विशेष आनन्द है; और जबर्दस्ती आत्मत्याग तो कोई आत्मत्याग नहीं है।

पाठक—यह तो बड़ा भारी हुक्म है। सब लोग इसकी तामील कब करेंगे?

संपादक—आप गलतीपर हैं। हम आपको दूसरोंसे क्या करना है? हर कोई अपना अपना कर्तव्य पालन करे। यदि मैं अपना कर्तव्य पालन करता हूं, अपनी सेवा आप करता हूं तो मैं दूसरोंकी भी कर सकूंगा। अब विदा होनेसे पहले मैं फिर एक बार दोहराये देता हूं--

१. सच्चा स्वराज्य आत्मशासन या आत्मसंयम है।

२. उसका मार्ग सत्याग्रह है—यही आत्मबल या प्रेमबल है।

३. इस बलसे काम लेनेके लिये हर बातमें 'स्वदेशी' की आवश्यकता है।

४. जो कुछ हम करना चाहते हैं, वह करें, इसलिये नहीं कि अंगरेजोंसे हमारा कुछ द्वेष है या उन्हें हम दण्ड देना चाहते हैं, बल्कि इसलिये कि उसे करना हमारा कर्तव्य है। इस प्रकार मान लीजिये कि यदि अंगरेज नमकका कर उठा दें, हमारा रुपया हमें वापिस दे दें, हिन्दुस्थानियोंको ऊँचेसे ऊँचे ओहदेपर बिठावें, अंगरेजी फौज यहांसे हटा ले जायं, तोभी हम मशीनके बने पदार्थोंका व्यवहार न करेंगे, न अंगरेजी भाषाका उपयोग करेंगे और न उनके अनेकों उद्योगधन्धोंसे काम लेंगे।

यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि ये चीजें स्वभावतः ही हानिकर हैं इसलिये हमें उनकी आवश्यंकता ही नहीं है। अंगरेजोंसे मेरा कोई द्वेष नहीं है, पर उनकी सभ्यतासे अवश्य है।

मेरी रायमें, हम लोगोंने विना वास्तविक अर्थ समझे ही "स्वराज्य" शब्दका प्रयोग किया है। स्वराज्य मैं किसको कहता हूं सो समझानेकी मैंने चेष्टा की है, और मेरी आत्मा गवाही देती है कि अवसे मेरा जीवन उसकी प्राप्तिमें उत्सर्ग होगा।

परिशिष्ट

कुछ आधारभूत ग्रन्थ

इस पुस्तकके विषयका अभ्यास आगे बढ़ानेके लिये नीचे लिखी पुस्तकें पढ़ना अच्छा होगा—

"The Kingdom of God is within you"—*Tolstoy.*

"What is Art ?"—*Tolstoy.*

"The Slavery of our Times."—*Tolstoy.*

"The First step"—*Tolstoy.*

"How shall we escape ?"—*Tolstoy,*

"Letter to a Hindoo"— *Tolstoy.*

"The white slaves of England"—*Sherard.*

"Civilisation—Its cause and cure."—*Carpenter.*

"The Fallacy of speed"—*Taylor.*

"A New Crusade."—*Blount.*

"On the Duty of Civil Disobedience."—*Thoreau.*

"Life without Principle."—*Thoreau.*

"Unto This Last."—*Ruskin.*

"A Joy for Ever"—*Ruskin.*

"Duties of Man."—*Mazzini.*

"Defence and Death of Socrates."—*From Plato.*

"Paradoxes of Civilisation."—*Max Nordau.*

"Poverty and Un-British Rule in India."—*Nowroji.*

"Economic History of India."—*Dutt.*

"Village Communities.—*Maine.*

विख्यात पुरुषोंके प्रमाणपत्र

मि० अलफ्रेड वेवके बहुमूल्य संग्रहसे नीचे कुछ अवतरण दिये जाते हैं। उनमें जो वातें लिखी हैं वे यदि सच हैं तो उनसे यह प्रकट होता है कि प्राचीन भारतीय सभ्यताको नवीन सभ्यतासे कुछ सीखना नहीं है।

विक्टर कजिन

(१७९२—१८६७)

"इसके विपरीत जब हम पूर्वके, विशेष कर हिन्दुस्थानके उन काव्यों और वेदान्तग्रन्थोंकी गतिको ध्यानसे देखते हैं जिनके प्रचारका आरंभ अब यूरोपमें हुआ है तो ऐसे ऐसे सिद्धान्तों, ऐसे ऐसे गभीर महत्सत्योंका पता लगता है कि कहनेकी कुछ वात नहीं, और यूरोपके बड़े बड़े बुद्धिमान सोचते सोचते जिस स्थानपर आकर रुक गये उस स्थानको देखकर यही कहना पड़ता है कि कहां हिन्दुस्थानकी प्रतिभा और कहां यूरोपकी बुद्धिकी यह क्षुद्रता, और इस प्रकार पूर्वके सामने अपना शिर नवाना पड़ता है, मनुष्य जातिके इस हिंडोलेमें महत्तम तत्वज्ञानकी जन्मभूमिके दर्शन होते है।"

जे० सेमोर के एम० पी०

बैंकर हिन्दुस्थानमें और इण्डिया एजेण्ट

(१८८३ का लेख)

"इस वातको जितना समझ लीजिये उतना ही थोड़ा है कि हिन्दुस्थानमें कभी हमारी यह प्रतिष्ठा नहीं थी कि हम सभ्य

कहलाते और असभ्योंको सभ्यता सिखलानेका दम भरते। जब हम लोग यहां आये तो देखा कि यहां अति प्राचीन सभ्यता वर्तमान है जो सहस्रोंवर्षव्यापी कालकी गतिके साथ साथ अपने जीवनको बड़ी बड़ी बुद्धिमान जातियोंकी आवश्यकताओंके अनुकूल बनाती हुई चली आयी है। यह सभ्यता कोई कूप-मंडूकवृत्ति नहीं, बल्कि सार्वत्रिक और विश्वव्यापिनी थी— जिससे केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक और पारिवारिक श्रृंखलाबन्धन होता था और वह सर्वाङ्गपूर्ण होता था। इन संस्थाओंकी उपकारिता हिन्दु जातिके चरित्रपर पड़े हुए इसके प्रभावोंसे ही मालूम हो जाती है। संसारमें और कोई जाति शायद ऐसी नहीं है जिसके चरित्रमें उसकी अपनी सभ्यताकी इतनी उपकारिता गोचर होती हो। हिन्दू व्यापारमें कुशल, वादमें न्यायी, मितव्ययी, धार्मिक, शान्त, उदार, मातापिताके सेवक, वृद्धोंके प्रति श्रद्धालु, मिलनसार, कानूनके पाबन्द, दीनोंपर दया करनेवाले और संकटमें धीर होते हैं।"

फ्रेडरिक मैक्समूलर, एल० एल० डी०

"हम यूरोपके रहनेवाले यूनानियों और रोमनों तथा सेमिटिकोंमेंसे यहूदियोंके तत्वधानसे ही पले हैं और अपने आन्तरिक जीवनको और अधिक पूर्ण, अधिक सर्वांगसुन्दर, अधिक व्यापक, यथार्थमें अधिक मानुषी बनानेके लिये, इसी जीवनके लिये नहीं बल्कि सनातन जीवन बनानेके लिये हम लोगोंको जिस संस्कारकी आवश्यकता है वह संस्कार हमें किस साहित्यमें

मिलेगा? इस प्रश्नके उत्तरमें भी मुझे हिन्दुस्थानकी ओर ही संकेत करना पड़ेगा।"

माइकेल जी० मुलहाल एफ० आर० ए० एस०

लेखा (१८९९)

फी लाख आदमी कैदियोंकी संख्या—

अनेक यूरोपियन राज्योंमें......१०० से २३० तक

इंगलैंड और वेल्समें............९०

हिन्दुस्थानमें..................३८

—"अंककोष," माइकेल जी० मुलहाल, एफ० आर० ए० एस०

राउलेज एंड सन्स, १८९९

कर्नल टामस मनरो

भारतवर्षमें ३२ वर्षकी नौकरीके बाद.

"यदि कृषिकी उत्तम पद्धति, बेजोड़ शिल्पकौशल, सुभीता और विलासिताकी सामग्री उत्पन्न करनेकी योग्यता, प्रत्येक ग्राममें लिखना, पढ़ना और गिनती सीखनेके लिये पाठशालाओंका होना; परस्पर दानधर्म और भावभगतका सामान्य न; और सबके ऊपर, स्त्रियोंके साथ विश्वास, आदर और ल व्यवहार इत्यादि बातें यदि सुसभ्य जातिके लक्षण तो हिन्दू यूरोपके राष्ट्रोंसे हीन नहीं; और सभ्यता यदि इन देशोंके बीच व्यापारकी वस्तु हो तो मुझे विश्वास है — इंगलैंड) देशका आमदमें ही लाभ है।"

फ्रेडरिक वान शीगल

"इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि पहलेके भारतवासियोंको सच्चे ईश्वरका ज्ञान था, उनके सब ग्रन्थ ईश्वर सम्बन्धी उच्च, स्पष्ट और गम्भीर उदात्त भावों और उद्गारोंसे ओतप्रोत भरे हुए हैं और इनमें इतने गहरे विचार ऐसी श्रद्धाके साथ व्यक्त किये गये हैं कि शायद ही और किसी मानवी भाषामें उसका जोड़ मिले.........जिन राष्ट्रोंका अपना तत्वज्ञान और अपना अध्यात्मशास्त्र है और जिनमें इन विषयोंका अनुसन्धान करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जैसा कि इस समय जर्मनीमें देखनेमें आता है और पुराने जमानेमें यूनानको जिसका गौरव था सो ऐसे राष्ट्रोंमें समयके विचारसे हिन्दुस्थान अग्रगण्य है।"

सर विलियम वेडरबर्न

"इस प्रकार कई शताब्दियोंसे भारतके ग्राम राजनीतिक अव्यवस्थाके धक्के सह कर भी अपनी स्थिति अटल अचल बनाये हुए हैं। इन ग्रामोंमें पारिवारिक तथा सामाजिक सद्गुणोंका ही पालन रहा है। इसलिये इसमें आश्चर्य ही क्या है जो तत्वज्ञानियों और इतिहासकारोंने बड़े प्रेमसे इन प्राचीन संस्थाओंका वर्णन किया है। ये संस्थाएं समाजके स्वाभाविक केन्द्र और ग्रामजीवनके सर्वोत्तम आदर्श हैं। ये आत्मसन्तुष्ट, उद्योगी, शान्तिप्रेमी और पुराणप्रिय लोग हैं।.........मैं समझता हूं, आप लोग भी इस बातको मानेंगे कि भारतीय [illegible]

मिलेगा ? इस प्रश्नके उत्तरमें भी मुझे हिन्दुस्तानकी ओर संकेत करना पड़ेगा।"

माइकेल जी० मुलहाल एफ० आर० ए० एस०

लेखा (१८९९)

फी लाख आदमी कैदियोंकी संख्या—
अनेक यूरोपियन राज्योंमें......१०० से २३० तक
इंगलैंड और वेल्समें............९०
हिन्दुस्थानमें..................३८
—"अंककोष," माइकेल जी० मुलहाल, एफ० आर० ए० एस०
राउलेज एंड सन्स, १८९९

कर्नल टामस मनरो

भारतवर्षमें ३२ वर्षकी नौकरीके बाद

"यदि कृषिकी उत्तम पद्धति, बेजोड़ शिल्पकौशल, सुभीता और विलासिताकी सामग्री उत्पन्न करनेकी योग्यता, प्रत्येक ग्राममें लिखना, पढ़ना और गिनती सीखनेके लिये पाठशालाओंका होना; परस्पर दानधर्म और सामान्य प्रचलन; और सबके ऊपर, कोमल व्यवहार इत्यादि हैं तो हिन्दू यूरोपके दो देशोंके बीच कि इस

पारिवारिक आनन्द तो भारतवासियोंके घरका नियम ही है— बड़े ही सुखी कुटुंब देखनेमें आते हैं, और विशेष आश्चर्य तो यह है कि मा बाप ही विवाहादि रचाते हैं और यहां यह हाल है। कितने ही भारतीय परिवार दम्पतिप्रेमकी पराकाष्ठाके दृष्टान्त हैं। संभव है कि शास्त्रोंकी शिक्षा और पतिव्रतासम्बन्धकी शास्त्राज्ञाओंका यह प्रभाव हो, पर इसमें जरा भी अत्युक्ति नहीं कि प्रायः भारतवासी अपनी गृहिणियोंपर अनन्य प्रेम करते हैं और गृहिणियां अपने अपने पतिके प्रति कर्त्तव्योंका बहुत ही उच्च आदर्श रखती हैं।"

अबे जे० ए० डुबाय

(मैसूरमें किसी समय पादरी थे जिनका यह नाम था और जिनकी १५ दिसम्बर १८२० को श्रीरङ्गपट्टणसे लिखी चिट्ठीका एक अंश नीचे दिया जाता है।)

"विवाहिता स्त्रियोंको घरमें जो अधिकार प्राप्त है वह यह है कि परिवारके सब लोगोंमें शान्ति और सुव्यवस्था बना रखें; और अनेक स्त्रियां इस महत्वपूर्ण कर्तव्यका पालन ऐसी खूबी और बुद्धिमत्ताके साथ करती हैं कि यूरोपमें शायद ही कहीं उसका जोड़ मिले। मैंने ऐसे परिवारोंको देखा है जहां तीस चालीस आदमी एक साथ रहते थे; लड़के भी हैं, लड़कियां भी—सबके विवाह हो चुके हैं और उनकी सन्तानें भी हैं और सब एक वृद्धा स्त्रीके मा कहिये या सास, आज्ञाको मानते हुए एक साथ रहते हैं। उस वृद्धा स्त्रीकी तारीफ है, जो अपने सुप्रबन्धसे, सब बहुओंके मिजाजमें अपना मिजाज मिलाकर,

पारिवारिक जीवनकी इस झलकमें बहुतसा अंश ऐसा है जो मनको हरने और चित्तको चुरानेवाला है। यह मनुष्यकी स्थिति-का ऐसा रूप है जिसमें किसीकी हानी नहीं और सबका केवल सुख ही सुख है। और इससे वास्तवमें बड़ा भारी लाभ होता है।"

जे० यंग

"ये लोग (भारतवासी) नैतिक दृष्टिसे विचारिये तो संसा-रमें सबसे अनोखे हैं। ये लोग नैतिक पवित्रताके वातावरणमें संचार करते हैं जिससे उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती; और विशेष कर गरीब लोग ऐसे होते हैं जो अपनी कमनसीबीके कारण खाली पेट रह कर भी सुखी और सन्तुष्ट दिखायी देते हैं। ये प्रकृतिके सच्चे सपूत आनन्दसे अपने दिन काटते हैं, इन्हें इस बातकी चिन्ता नहीं रहती कि कल क्या होगा और ईश्वरने उन्हें जो कुछ दिया है उसीसे सन्तुष्ट और उसके लिये ईश्वरके कृतज्ञ रहते हैं। दिनभरकी मेहनतके बाद जब वे मजदूर स्त्री और पुरुष दोनों सूर्यास्तके बाद कामपरसे घर लौटते हैं तो वह दृश्य देखकर मनमें एक विचित्र भाव उत्पन्न होता है। अविश्रान्त श्रमसे अत्यन्त श्रान्त होनेपर भी वे बड़े आनन्दी दिखायी देते हैं, बड़ी प्रसन्नतासे आपसमें बातचीत करते और बीच बीचमें गाते बजाते भी हैं। और जिन झोपड़ियोंको वे अपने घर समझते हैं वहां उनके सुखकी क्या सामग्री रहती खानेके लिये एक थालमें भात और सोनेके लिये फर्श।

पारिवारिक आनन्द तो भारतवासियोंके घरका नियम ही है—पड़े ही सुखी कुटुंब देखनेमें आते हैं, और विशेष आश्चर्य तो यह है कि मा बाप ही विवाहादि रचाते हैं और यहां यह हाल है। कितने ही भारतीय परिवार दम्पतिप्रेमकी पराकाष्ठाके दृष्टान्त हैं। संभव है कि शास्त्रोंकी शिक्षा और पतिपत्नीसम्बन्धकी शास्त्राज्ञाओंका यह प्रभाव हो, पर इसमें ज़रा भी अत्युक्ति नहीं कि प्रायः भारतवासी अपनी गृहिणियोंपर अनन्य प्रेम करते हैं और गृहिणियां अपने अपने पतिके प्रति कर्त्तव्योंका बहुत ही उच्च आदर्श रखती हैं।"

अबे जे० ए० डुबाय

(मैसूरमें किसी समय पादरी थे जिनका यह नाम था और जिनकी १५ दिसम्बर १८२० को श्रीरङ्गपट्टममें लिखी चिट्ठीका एक अंश नीचे दिया जाता है।)

"विवाहिता स्त्रियोंको घरमें जो अधिकार प्राप्त है वह यह है कि परिवारके सब लोगोंमें शान्ति और सुव्यवस्था बना रखें; और अनेक स्त्रियां इस महत्वपूर्ण कर्त्तव्यका पालन ऐसी खूबी और बुद्धिमत्ताके साथ करती हैं कि यूरोपमें शायद ही कहीं उसका जोड़ मिले। मैंने ऐसे परिवारोंको देखा है जहां तीस चालीस आदमी एक साथ रहते थे; लड़के भी हैं, लड़कियां भी—सबके विवाह हो चुके हैं और उनकी सन्तानें भी हैं और सब एक बूढ़ा [illegible] कहिये या सास, आज्ञाको मानते [illegible] साथ [illegible] बूढ़ा स्त्रीकी तारीफ है, जो अपने [illegible] अपना मिज़ाज मिलाकर,

कभी घुड़क कर और कभी क्षमा धारण कर इतने वर्ष इतनी परस्परविरोधी स्वार्थ और बड़ी भारी बात तो यह है कि परस्परविरोधी मिजाजवाली स्त्रियोंको मिलाये रहती थी। मैं आपसे पूछता हूं कि ऐसी अवस्थामें क्या अपने उधरके देशोंमें यह संभव है कि यह पारिवारिक आनन्द देखनेमें आवे जहां एक घरमें रहनेवाली दो स्त्रियोंका निभाना असंभव होता है ?

"किसी सभ्य देशमें कोई ऐसा सत्य व्यवहार नहीं है जिसमें हिन्दु रमणियोंका यथेष्ट भाग न हो। पारिवारिक प्रबन्ध और परिवारके पालनपोषणके अतिरिक्त यह भी देखिये कि कृषकोंकी स्त्रियां और लड़कियां कृषिकर्ममें अपने पति और पिताकी सेवा और सहायता किया करती हैं। व्यापारियोंकी स्त्रियां उनकी सहचारिणी होती हैं। दूकानदारोंको स्त्रियां दूकानोंमें दूकानदारोंका साथ देती हैं; बहुतसी खुदही दूकानपर बैठ खरीद बिक्री करती हैं; उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है, विलायती स्कूलके अंक वे पढ़ भी नहीं सकतीं, पर अन्य उपायसे अपना हिसाब इतना अच्छा रखती हैं कि कोई क्या रखेगा, यही नहीं बल्कि व्योपारके लेन देनमें वे पुरुषोंसे भी अधिक बुद्धिमती समझी जाती हैं।"

महात्मा टालसटाय और सत्याग्रह

(महात्मा टाल्सटायने १९१० में महात्मा गांधीको दक्षिण आफ्रिकामें
को पत्र भेजा था उसका अनुवाद ।)

काचेटी, रूस,
७, सितम्बर १९१०

प्रिय मि० गांधी,

आपका पत्र मिला और उसमें सत्याग्रहियोंका हाल पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। पत्र पढ़ते समय ऐसा मालूम होता था मानो उसे पढ़कर जो विचार मेरे मनमें उत्पन्न होते थे वे मैं आपसे कह रहा हूं।

जीवनका महत्तम सिद्धान्त—प्रेम

जबतक मैं इस संसारमें रहूं मेरी यह इच्छा है कि मैं अपने भावोंको दूसरोंपर प्रकट करूं, विशेष कर इस समय जब कि मुझे इस शरीरका शीघ्र ही अवसान होनेके लक्षण दिखायी दे रहे हैं। मैं सत्याग्रहको बड़े महत्वकी चीज समझता हूं पर यह सत्याग्रह कैसा हो कि उसमें और कुछ नहीं, केवल प्रेम ही प्रेम हो। यह प्रेम—अर्थात् परस्पर मेलके लिये आत्माओंका प्रयत्न मानवी जीवनका सर्वश्रेष्ठ और एकमात्र सिद्धान्त है और प्रत्येक मनुष्यका अन्तःकरण इस बातको जानता और अनुभव करता है (छोटे छोटे बच्चोंमें यह बात स्पष्ट देख पड़ती है)। जबतक संसारकी झूठी सिखावनमें यह फांसा नहीं जाता तब-

तक वह इस सिद्धान्तका अनुभव करता है। संसारके सब महात्माओंने (हिन्दू, चीनी, यहूदी और रोमन सभीने) इस सिद्धान्तको घोषित किया है। ईसाने तो बहुतही स्पष्ट करके लिखा है, "इस सिद्धान्तमें और सिद्धान्त और पैगम्बर सभी आ जाते हैं।" परन्तु इस सिद्धान्तके मार्गमें जो विघ्न हैं उन्हें सोचकर ईसाने उनसे बचनेके लिये पहले ही उनका निर्देश कर रखा है। जो लोग ऐहिक आचारविचारमें मगन रहते हैं उनका मोहमें फंसना स्वाभाविक है; अर्थात् यह हो सकता है कि लोग अपने ऐहिक स्वार्थोंके लिये शारीरिक बलका भी प्रयोग करें। ईसाको मालूम था और प्रत्येक समझदार मनुष्य जानता है कि शारीरिक बलप्रयोग जीवनके महत्तम सिद्धान्त—प्रेमके एकदम विपरीत है, वह क्षीण हो जाता है और इस तरह यह सिद्धान्त ही अमान्य हो जाता है। ईसाइयोंकी सारी उन्नति इसी भ्रमपर उठी हुई है। यह भ्रममूलक उन्नति जान बूझ कर और बेजाने भी हुई है।

ईसाइयोंका आत्मखंडन

सच पूछिये तो जब प्रेममें जोरजबर्दस्ती आ जाती है तब प्रेम ही कहां रहा? और प्रेमका ही नेम नहीं रहा तो सिवाय जोर जबर्दस्तीके और रही क्या गया? इसी जोरजबर्दस्तीके साथ उन्नीस सौ वर्ष ईसाइयोंके बीते। यह सच है कि उन्हें अपना जीवनप्रबन्ध करनेके लिये बलप्रयोग करना पड़ता था। ईसाई राष्ट्रों और अन्य राष्ट्रोंमें भेद इतना ही है कि ईसाइयोंने प्रेमधर्मको स्वीकार किया और साथ साथ जोर जबर्दस्ती भी जारी

रखी; अपना जीवन ही भौतिक बलपर खड़ा किया और इस तरह ईसाइयोंका समस्त जीवन उनके माने हुए सिद्धान्त और आचरणका परस्परविरोध है, माने हुए प्रेमधर्म और आचरण किये हुए बलप्रयोगका परस्परसंघर्षण है। मानते हैं प्रेमधर्मको और उपयोग करते हैं भौतिक बलको ! मानते हैं सबको भाई भाई पर इकट्ठा करते हैं सामान बादशाह, फौज और दरबारके, यह परस्परविरोध ईसाई जीवनमें बढ़ता ही गया है और अब तो यह चोटीतक पहुंच गया है। अब बात यों है कि या तो आप यह स्वीकार कीजिये कि हम लोग धर्म और रीतिनीतिको नहीं मानते और जिसकी लाठी उसकी भैंसके सिद्धान्तपर ही चलते हैं; या सब टैंपल, कोर्ट, पुलिस और सबसे पहले अपनी फौजोंको उठा दीजिये।

निर्दोष बालिकाकी जीत

इस वर्ष वसन्तमें मास्कोके एक कन्याविद्यालयकी परीक्षामें परीक्षक पादरीने बालिकाओंसे ईसाकी दस आज्ञाओं, विशेष कर छठी आज्ञाके सम्बन्धमें प्रश्न किये। बालिका जब ठीक ठीक उत्तर दे चुकती थी तो पादरी महाशय उनसे यह भी प्रश्न करते थे कि क्या परमेश्वरने हर हालतमें खून मना किया है। लड़कियोंको पहले ही सिखा दिया जाता है कि अमुक प्रश्नका अमुक उत्तर देना, तदनुसार कन्याएं बेचारी कह देती थीं कि, "हर हालतमें नहीं"—अर्थात् लड़ाईमें और अपराधियोंको फांसी लटकानेमें खून मना नहीं है। फिर भी एक लड़कीने (यह बात

में मनगढ़न्त नहीं कह रहा हूं; यह वास्तविक घटना है) गुस्सा होकर यह जवाब दिया कि, "हां, हां, हर हालतमें ।" पादरीने कई तरहसे उससे सवाल किये जिसमें वह ठिकानेसे उत्तर दे, पर उसने निश्चयपूर्वक एक ही उत्तर दिया कि, "हां, हर हालतमें खून करना मना है, पुरानी धर्मपुस्तकमें ईसाने मना किया है, केवल किसीको मार डालना ही नहीं बल्कि किसी भाईपर कोई अन्याय करना भी मना है। पादरी महाशयकी शान, बोलनेका ढंग कुछ भी काम न आया, उन्हें चुप रहना पड़ा और निर्दोष बालिकाकी जीत हुई ।

सबसे आवश्यक कार्य

यह हो सकता है कि हम लोग समाचारपत्रोंमें हवाई जहाजोंकी उन्नति, पेंचदार राजनीतिक सम्बन्ध, भिन्न भिन्न सभा-समाज, भिन्न भिन्न प्रकारके संघ, जिसको ये लोग आर्ट (कला) कहते हैं उसके नमूने आदि विषयोंकी चर्चा करें और उस बालिकाका कोई जिक्र न करें। पर आप कुछ न कहेंगे तो यह बात ही हवा हो जायगी ऐसा मत समझिये, क्योंकि लोग इसको कुछ कुछ अनुभव करते हैं और ईसाई दुनियांमें हर एक मनुष्य सदा इसका अनुभव कर रहा है। समाजसत्तावाद, सम्प्रदायवाद, अराजकता, मुक्तिफौज, अपराधवृद्धि, बेकारी, अमीरोंकी विलासिता और गरीबोंकी हीनता, आत्महत्याओंकी आश्चर्य-कर संख्यावृद्धि—ये सब लक्षण उसी आन्तरिक संघर्षणके हैं जिसका निवारण करना होगा, जिसका निवारण किये बिना

काम न चलेगा अर्थात् प्रेमधर्मका स्वीकार और भौतिक बलका बहिष्कार करना होगा।

और इस प्रकार संसारके छोरपर बसे हुए ट्रांसवालमें आप जो काम कर रहे हैं वह सबसे आवश्यक काम है, संसारमें इस समय जो कुछ काम हो रहा है उस सबसे यह काम आवश्यक है और इसमें न केवल ईसाई राष्ट्र बल्कि सारा संसार सम्मिलित होगा।

ईश्वर मनुष्यसे शक्तिशाली है।

मैं समझता हूं, आपको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि रूसमें भी यह उद्योग हो रहा है और लोग सेनामें भरती होनेसे इनकार कर रहे हैं। दिन दिन ऐसे लोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसे लोगोंकी संख्या अभी बहुत कम है जो सत्याग्रही हैं और फौजमें भरती होनेसे इनकार करते हैं। फिर भी ये लोग साहसके साथ यह कह सकते हैं कि ईश्वर मनुष्यसे अधिक शक्तिशाली है।

"जीना या मरना?"

ईसाके धर्मको उसके वर्तमान दुष्ट रूपमें स्वीकार करनेपर भी उसमें और बड़े बड़े युद्धोंमें मनुष्योंको मारनेके लिये जलसेना और स्थलसेनाकी आवश्यकता स्वीकार करनेमें इतना स्पष्ट विरोध है कि आज नहीं कल यह अवश्य ही प्रकट होगा और या तो ईसाई धर्मकी दोहाई देना छूट जायगा जिसके बिना फौज रखना असंभव है या फौज और भौतिक बलप्रयोगका ही नाम मिट

जायगा। इस विरोधको हमारी रूसी सरकार अनुभव करती है और अपने बचावके लिये और सब प्रतिकारोंसे इसीपर अधिक जोर लगाकर उन लोगोंपर अत्याचार कर रही है। रूसमें यही हो रहा है और आपने जो समाचारपत्र भेजा है उससे भी यही मालूम होता है। जो लोग सरकारका उक्त प्रकारसे विरोध करते हैं, सरकारें जानती हैं कि उनका काल कहां है और वे बड़ी चिन्ता और उद्योगके साथ इस प्रश्नमें केवल अपने स्वार्थोंकी नहीं—इस प्रश्नकी रक्षा किये हुए हैं कि–"जीना या मरना ?"

आपका विश्वस्त
लीओ टालस्टाय

रवीन्द्रनाथका पत्र

(१९१९ ई० के अप्रैल मासमें महात्मा गान्धीने जब सत्याग्रह प्रारम्भ किया उस समय उनके पास कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका आया हुआ पत्र)

शान्ति निकेतन, १२ अप्रेल १९१९ ई०

इस संकटकालमें एक महान् मानवनेताके रूपसे आप हम लोगोंके बीच खड़े हैं और उस आदर्शके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं जिसे आप हिन्दुस्थानका आदर्श समझते हैं और जो लुक छिपकर बदला लेनेकी कायरता और भयभीत होकर मुर्दा बन जानेकी अवस्था दोनोंके विरुद्ध है। महात्मा बुद्धदेवने अपने समयमें और त्रिकालके लिये जो बात कही थी वही आपने कही है अर्थात्

"अक्रोधेन जिने क्रोधम् असाधुं साधुना जिने॥"

"क्रोधको अक्रोधसे जीतो और असाधुको साधुतासे।"

इस साधुताकी शक्तिको अपनी सत्ता और सामर्थ्य अपनी निर्भयतासे सिद्ध करनी होगी, किसी प्रकारके दमनको स्वीकार करनेसे काम न चलेगा। दमनका सारा दारमदार डर और दहशत पैदा करनेकी ताकतपर है। इस दमननीतिको इस बातकी लज्जा नहीं आती कि एक बिलकुल बेहथियार रियायापर हम वरबादीकी मशीनें क्या चलाते हैं! हम लोगोंको यह ध्यानमें रखना होगा कि नैतिक विजय सफलताके रूपसे ही नहीं होती, यदि विफलता भी हो तौभी उसका गौरव और मूल्य कम नहीं होता। जो लोग आध्यात्मिक जीवनको मानते हैं वे

इस बातको जानते हैं कि भयङ्कर भौतिक बलके भरोसे किये जानेवाले अन्यायके विरूद्ध खड़े होना भी बड़ी भारी जीत है। यह जीत उस धर्मके प्रत्यक्ष विश्वासकी जीत है जो निश्चित पराभवके जबड़ोंमें फंसा हुआ है।

मैं बराबर यही समझता रहा हूं और कहता भी आया हूं कि किसीके दातृत्वसे लोगोंको स्वतन्त्रताका महावरदान न प्राप्त होगा। स्वतन्त्रता जीत लेनी होगी तब वह हमारी होगी और उसको जीतनेका अवसर हिन्दुस्थानको तभी मिलेगा जब वह यह सिद्ध करे कि जो लोग शस्त्रके अधिकारसे हमलोगोंपर राज कर रहे हैं, चरित्रमें हमलोग उनसे श्रेष्ठ हैं। उसे दुःख उठाकर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा·······निर्विकार और निर्भय होकर उसे उस घमण्डका सामना करना होगा जो आत्मिक बलको कोई चीज नहीं समझता।

हिन्दुस्थानको अपने मार्गका स्मरण दिलानेके लिये, विजयके सच्चे मार्गपर ले आनेके लिये, उसे राजकाजकी बेईमानी भरी चाल चलनेमें ही सिद्धि माननेवाली दुर्बलताके वर्तमान राजकाजसे छुड़ानेके लिये आप ठीक समयपर आगये हैं, जब आपकी जरूरत थी।

इसीलिये मैं हृदयसे ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूं कि आपकी कूच करती हुई फौजसे कोई ऐसी बात न हो जिससे हमारी आध्यात्मिक स्वतन्त्रताका बल घटे, सत्यके लिये प्राण देनेका वह जोश केवल बकवादमें ही न उतर आवे, उससे

आत्मवञ्चनाकी नौबत न आये जो पवित्र नामोंके पीछे छिपी रहा करती है।

प्रस्तावनाके तौरपर इन शब्दोंके साथ मैं आपसे आपके पवित्र कार्यमें एक कविकी हैसियतसे नीचे लिखा लेख अर्पण करनेकी आज्ञा चाहता हूं।

(१)

ईश्वर हमारा सहारा है, इस विश्वाससे हमारा शिर सदा ऊंचा रहे; किसीसे डरना तो तेरी श्रद्धासे गिरना है, यह कमीनापन है।

मनुष्यसे डरना ? कौन है ऐसा मनुष्य इस संसारमें, जो ऐ बादशाहोंके बादशाह, तेरा सानी हो,जो मुझपर कब्जा कर सके ?

संसारमें कौन ऐसी शक्ति है जो हमारी स्वतन्त्रता हर ले ? तेरी बाहें कैदखानोंके भीतर भी आत्माको स्वतन्त्र करनेके लिये पहुंच जाती हैं।

क्या मैं एक कंजूसकी तरह कालके भयसे शरीरसे लिपटा रहूं ? क्या अमर जीवनकी दावतमें मेरी इस आत्माको न्यौता नहीं मिला है ?

मृत्यु और दुःख तो क्षणभरकी छाया है। मेरे और तेरे बीचमें जो अंधेरा है वह सूरज निकलनेके पहलेका पाला है; मैं तुम्हहीको जानता हूं, तूही मेरा है, मेरे मनुष्यत्वपर हंसी उड़ानेवाली ताकतकी शेखीको मैं क्या समझता हूं, जब तेरी शरणमें हूं !

(२)

मुझे भक्तिका भारी साहस दे, यही मेरी प्रार्थना है। तेरी इच्छाके अनुसार बोलने, काम करने और कष्ट झेलनेका साहस दे, बाकी जो हो इससे उससे क्या मतलब !

भक्तिमें मेरी बुद्धि दृढ़ कर, ऐसी बुद्धि दे कि मृत्युमें ही जीवन दिखायी दे, हारमें ही जीत मालूम हो, प्रेमकी वह छिपी ताकत दे, कष्टका गौरव करनेकी वह बुद्धि दे जो चोट सह ले पर चोट न करे, यही मेरी प्रार्थना है।

आपका सच्चा स्नेही

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

स्वदेशीव्रत

• (गत वर्ष स्वदेश भारतमें स्वदेशी प्रचारका कार्य आरम्भ करते समयका महात्मा गान्धीका मैत्र)

ईश्वरको साक्षी रखकर मैं श्रद्धाके साथ यह प्रण करता हूं कि आजसे मैं हिन्दुस्तानी रुई, रेशम या ऊनसे, हिन्दुस्तानमें ही बने हुए कपड़ेसे अपना काम चलाऊंगा और विदेशी कपड़ेका उपयोग न करूंगा, और मेरे पास जो भी विदेशी कपड़ा होगा उसे नष्ट कर दूंगा।

इस प्रणको ठीक ठीक निबाहनेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि हाथका ही काता और बुना हुआ कपड़ा काममें लाया जाय। बाहरसे आया हुआ सूत स्वदेशी नहीं हो सकता चाहे कपास हिन्दुस्तानका ही हो और उसका हिन्दुस्तानमें ही उससे कपड़ा तैयार हुआ हो। हमारा काम तभी पूरा होगा जब देशी कतुओंसे ही हमारे कपाससे सूत काता जाय और उस सूतसे करघोंपर कपड़ा तैयार हो। पर ऊपर जो प्रतिज्ञा है उसकी हद यहांतक है कि हम सब बाहरसे आये हुए यंत्रों द्वारा तैयार किये कपड़े काममें ला सकते हैं। यदि हम इतना ही करें तो प्रतिज्ञा निभ जाती है।

मैं यहां यह भी कह देना चाहता हूं कि जो लोग इस मर्यादित स्वदेशी व्रतका प्रण करें वे केवल स्वदेशी कपड़ोंसे ही सन्तुष्ट न हों, जहांतक हो सके वे और सभी वस्तुओंके सम्बन्धमें इस प्रणका उपयोग करें।

अंगरेजोंकी मिलें

मुझे यह खबर लगी है कि हिन्दुस्थानमें अंगरेज महाजनोंकी ऐसी भी कई मिलें हैं जहांके शेयर हिन्दुस्थानियोंको नहीं मिलते। यदि यह बात सच हो तो मैं इन मिलोंके कपड़ोंको भी विदेशी ही समझूंगा। और यह भी बात है कि इस कपड़ेमें बदनीयतीका दाग लगा हुआ है। इस तरहका कपड़ा चाहे अच्छा क्यों न हो, लेना न चाहिये। अधिकांश लोग ऐसी ऐसी बातोंका कुछ विचार नहीं करते। सबसे यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वे सदा देशकी भलाई सामने रखकर ही जो करना हो करेंगे। पर जो लोग विद्वान हैं, विवेकशील हैं, जिनके दमाग तालीम पाये हुए हैं या जो अपने देशकी सेवा करनेकी इच्छा रखते हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे कोई भी सार्वजनिक या व्यक्तिगत काम करनेके पूर्व यह सोच लिया करें कि इसका देशपर क्या परिणाम होगा। और तब जो भाव राष्ट्रीय कल्याणके प्रतीत हों और अपने प्रत्यक्ष अनुभवसे जिनकी परीक्षा हो चुकी हो उन्हें सर्व साधारणके सामने रखें। तब लोग उनका अनुकरण करने लगेंगे जैसा कि भगवद्गीतामें कहा है, "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।" अभी विवेकी स्त्री-पुरुषोंतकने इस प्रकारसे आत्मपरीक्षण नहीं किया है। इस उपेक्षाके कारण राष्ट्रकी बड़ी हानि हुई है। मैं समझता हूं कि बिना धर्मिक श्रद्धाके इस प्रकारका आत्मपरीक्षण सम्भव नहीं।

बहुतसे लोग यह समझते हैं कि हिन्दुस्थानकी मिलोंमें बने

हुए कपड़े पहननेसे ही उनकी स्वदेशीकी प्रतिज्ञा निभ जाती है। पर बात यह है कि महीनसे महीन कपड़ा जो तैयार होता है वह हिन्दुस्थानके बाहर काते हुए विदेशी सूतसे बनता है। इसलिये इस तरहके कपड़े के व्यवहारमें संतोषकी बात इतनी ही है कि इसकी बुनावट स्वदेशी होती है। देशी करघोंपर भी महीनसे महीन कपड़ा विदेशी सूतसे ही बुना जाता है। ऐसे कपड़ोंके व्यवहारसे स्वदेशी मतका पालन नहीं होता। इसे स्वदेशी कहना अपने आपको धोखा देना है। सत्याग्रह—सत्यका आग्रह स्वदेशीमें भी रहना चाहिये। जब लोग यह कहने लग जायंगे कि हम लोग केवल विशुद्ध स्वदेशी ही वस्त्र पहनेंगे, चाहे हमें सिवाय धोती और कोई चीज न मिले, और सब स्त्रियां प्रणपूर्वक यह कहने लगेंगी कि हम लोग शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहनेंगी चाहे हमें लज्जानिवारणभरके लिये ही वस्त्र मिले, अधिक न सही—यह जब होगा तब हमारा स्वदेशीका महाप्रण पूरा होगा। यदि कुछ सहस्र स्त्री पुरुष इसी भावसे स्वदेशीका प्रण कर लें तो और लोग भी उनका अनुकरण करने लगेंगे। तब लोग स्वदेशी मतकी शुद्ध दृष्टिसे अपनी पोशाकका परीक्षण करना आरम्भ करेंगे। जो लोग फिटफाटके शौकीन नहीं हैं वे इस स्वदेशीके प्रचारका बहुत बड़ा काम कर सकते हैं।

साधारणतः हिन्दुस्थानमें बहुत ही कम गांव ऐसे हैं जहां जुलाहे न हों। सदासे ही हर गांवमें बढ़ई, लुहार और मोचीके साथ साथ खेतीहर और जुलाहे भी होते हैं। पर हमारे

किसान भाई कंगाल हो गये हैं और जुलाहोंको सहारा देनेवाले ये ही कंगाल लोग रह गये हैं। इन्हें यदि हम हिन्दुस्थानमें ही काता हुआ सूत, दिया करें तो हमें आवश्यकतानुसार कपड़ा मिल सकता है। अभी यह कपड़ा मोटा होगा और भद्दा भी रहेगा पर जुलाहोंसे हम महीन सूतसे भी कपड़ा बुनवा ले सकेंगे और इस तरह उनका दर्जा भी ऊंचा होगा और यदि हम एक कदम और आगे बढ़ें तो कठिनाइयोंका समुद्र ही पार हो जाय। हम अपनी स्त्रियों और बच्चोंको सूत कातना और कपड़ा बुनना बहुत आसानीसे सिखला सकते हैं और यदि इस प्रकार अपने घरमें कपड़ा बुना जाय तो उससे अधिक पवित्र और कौनसा वस्त्र हो सकता है ? मैं अपने अनुभवसे यह बतलाता हूं कि यदि हम लोग ऐसा करें तो बहुतसी कठिनाइयां हल हो जायंगी, बहुतसी अनावश्यक आवश्यकताओंसे हमारा छुटकारा हो जायगा और हमारा जीवन सरस और आनन्दमय होगा। मेरे कानोंमें सदा ही यह आकाशवाणी गूंजती रहती है कि भारतका किसी समय ऐसा ही जीवन था। परन्तु यदि फिर वैसा ही भारत केवल कविका स्वप्न ही मात्र क्यों न हो ? उसमें हर्ज ही क्या है ? क्या यह आवश्यक नहीं है कि फिर ऐसे भारतकी सृष्टि हो ? क्या यही हमारा पुरुषार्थ नहीं है ? मैं इन गरीब भाइयोंकी हृदय भेदनेवाली आवाजको नहीं सह सकता। क्या बूढ़े और क्या जवान सभी मुझसे कहते हैं, "हमें सस्ता कपड़ा नहीं मिलता। इतना महंगा कपड़ा हम

कहांसे लायें ? सभी चीजें महंगी हैं, कैसे जीयें !" लोग बेचारे निराश हो रहे हैं। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इन्हें सन्तोष-जनक उत्तर दूं। प्रत्येक देशसेवकका यह कर्त्तव्य है। पर मैं सन्तोषजनक उत्तर दे नहीं सकता। विचारशील भारतवासी मात्रको यह बात सह्य नहीं हो सकती कि हमारा कच्चा माल सब यूरोप भेजा जाय और हम लोग दुर्भिक्षके कष्ट झेलें। इसका आदि और अन्तिम उपाय स्वदेशी है। हम लोग किसीसे बंधे नहीं हैं जो अपनी रूई बेच दिया करें और जब हिन्दुस्थान भरमें स्वदेशीकी ध्वनि और प्रतिध्वनि गूंज रही हो, तो किस कपासके किसानको जरूरत पड़ी है जो उसे बेच दे जिसमें विदेशोंसे कपड़ा बुनकर आवे ? जब स्वदेशीका भाव देशभरमें फैल जायगा तो हरएक आदमी यह सोचने लगेगा कि कपासका मैल छुड़ाना, कातना और बुनना अपने ही यहां क्यों न हो ? और जब स्वदेशीका मन्त्र एक एक मनुष्यके कानमें गूंजने लग जायगा तब भारतके आर्थिक उद्धारकी कुञ्जी भारतके हाथमें आ जायगी। इसके लिये सैकड़ों वर्ष तालीम देनेकी जरूरत नहीं पड़ती। जब देशमें धर्मश्रद्धा जागृत हो जायगी तो एक पलमें सबके विचारोंमें एकदम क्रान्ति हो जायगी। केवल निःस्वार्थ त्यागसे ही सब काम बननेवाला है। इस समय स्वार्थत्यागका भाव भारतवर्षमें पूर्णमात्रासे संचार कर रहा है। यदि इस समय स्वदेशीका प्रचार करनेमें हम लोग चूके तो फिर हाथ मलके ही रह जाना पड़ेगा। मैं प्रत्येक हिन्दू, मुसल्मान, सिख, पार्सी,

ईसाई और यहूदीसे प्रार्थना करता हूं कि यदि तुम अपनेको इस देशकी सन्तान समझते हो तो स्वदेशीका प्रण करो और दूसरोंसे कराओ। मेरी तुच्छ बुद्धिमें तो यह आता है कि यदि हम इतना भी न कर सके तो हमने व्यर्थ ही जन्म लिया। जो लोग गम्भीर विचार करते हैं वे समझ जायंगे कि यह स्वदेशी केवल आर्थिक सुव्यवस्था है। मुझे आशा है कि प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री मेरी इस क्षुद्र सूचनापर गम्भीरताके साथ विचार करेगी। अंगरेजी अर्थशास्त्रोंके सिद्धान्तोंका अनुकरण करनेसे तो हमारा सत्यानाश होगा।

महात्मा गान्धी

आल इंडिया होमरूल लीगके अध्यक्षके रूपमें

(महात्मा गान्धीका आल-इण्डिया-होमरूल-लीगके अध्यक्षके नाते लीगके सदस्योंको लिखा पहला पत्र)

एक ऐसी संस्थामें जो केवल और स्पष्टतः राजनीतिक संस्था है, मेरा सम्मिलित होना अपनी अबतककी समगतिमें स्पष्ट ही परिवर्तन करना है। पर अपने मित्रोंके साथ यथेष्ट परामर्श करनेके पश्चात् मैं आल-इण्डिया-होमरूल लीगमें सम्मिलित हुआ मैंने उसका अध्यक्षपद स्वीकार किया है। जिन लोगोंसे किया उनमेंसे कुछ मित्रोंने मुझसे कहा कि आप भी राजनीतिक संस्थामें सम्मिलित न होइये और यदि

हुए तो आज तटस्थताकी जो महान् प्रतिष्ठा आपको प्राप्त है वह जाती रहेगी। मैं स्वीकार करता हूं कि इस बातकी मुझे बहुत चिन्ता थी। इसके साथ ही मैंने यह भी सोचा कि यदि लीग मुझे स्वीकार करे और उसने स्वीकार किया ही है, तो जिस संस्थाको मैं उन उद्योगोंके बढ़ानेके काममें ला सकता हूं और जिससे उन उपायोंके प्रचारका काम ले सकता हूं जो उपाय कि, मुझे अनुभवसे ज्ञात हुआ है कि, साधारणतः किये जानेवाले उपायोंसे अधिक सुपरिणामकारी और शीघ्र फल देनेवाले हैं—जिस संस्थासे मैं यह सब काम ले सकता हूं—उसके नाममें अपना नाम यदि मैं सम्मिलित न करूं तो यह एक अन्याय होगा। लीगमें सम्मिलित होनेसे पहले मैंने उन लोगोंकी सम्मति जाननेका भी प्रयत्न किया जो इस प्रान्तके बाहर रहनेवाले हैं और जिनके साथ उतने निकट सम्बन्धका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है जितना कि बम्बई प्रान्तके सह-कार्यकर्ताओंके साथ। जिन उद्योगोंकी बात मैंने ऊपर कही है वे ये हैं—स्वदेशी, हिन्दू मुसलमानोंकी एकता (विशेष ध्यान खिलाफतका है), हिन्दुस्थानीको राष्ट्रभाषा स्वीकार करना और भाषाभेदके अनुसार भारतके प्रान्तोंकी फिरसे रचना करना। यदि लीगके सदस्योंको समझाकर उन्हें मैं अपनी रायपर ले आ सका तो मैं इन उद्योगोंमें उसका उपयोग करूंगा जिसमें देशका विशेष ध्यान और समय इन्हीं कामोंमें लगे।

मैं यह बात खुले दिलसे स्वीकार करता हूं कि राष्ट्रके जोशी-

ईसाई और यहूदीसे प्रार्थना करता हूं कि यदि तुम अपनेको इस देशकी सन्तान समझते हो तो स्वदेशीका प्रण करो और दूसरोंसे कराओ। मेरी तुच्छ बुद्धिमें तो यह आता है कि यदि हम इतना भी न कर सके तो हमने व्यर्थ ही जन्म लिया। जो लोग गम्भीर विचार करते हैं वे समझ जायंगे कि यह स्वदेशी केवल आर्थिक सुव्यवस्था है। मुझे आशा है कि प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री मेरी इस क्षुद्र सूचनापर गम्भीरताके साथ विचार करेगी। अंगरेजी अर्थशास्त्रोंके सिद्धान्तोंका अनुकरण करनेसे तो हमारा सत्यानाश होगा।

महात्मा गान्धी

आल इंडिया होमरूल लीगके अध्यक्षके रूपमें

(महात्मा गान्धीका आल-इण्डिया-होमरूल-लीगके अध्यक्षके नाते लीगके सदस्योंको लिखा पहला पत्र)

एक ऐसी संस्थामें जो केवल और स्पष्टतः राजनीतिक संस्था है, मेरा सम्मिलित होना अपनी अबतककी समगतिमें स्पष्ट ही परिवर्तन करना है। पर अपने मित्रोंके साथ यथेष्ट परामर्श करनेके पश्चात् मैं आल-इण्डिया-होमरूल लीगमें सम्मिलित हुआ हूं और मैंने उसका अध्यक्षपद स्वीकार किया है। जिन लोगोंसे मैंने परामर्श किया उनमेंसे कुछ मित्रोंने मुझसे कहा कि आप किसी भी राजनीतिक संस्थामें सम्मिलित न होइये और यदि

हुए तो आज तटस्थताकी जो महान् प्रतिष्ठा आपको प्राप्त है वह जाती रहेगी। मैं स्वीकार करता हूं कि इस बातकी मुझे बहुत चिन्ता थी। इसके साथ ही मैंने यह भी सोचा कि यदि लीग मुझे स्वीकार करे और उसने स्वीकार किया ही है, तो जिस संस्थाको मैं उन उद्योगोंके बढ़ानेके काममें ला सकता हूं और जिससे उन उपायोंके प्रचारका काम ले सकता हूं जो उपाय कि, मुझे अनुभवसे ज्ञात हुआ है कि, साधारणतः किये जानेवाले उपायोंसे अधिक सुपरिणामकारी और शीघ्र फल देनेवाले हैं—जिस संस्थासे मैं यह सब काम ले सकता हूं—उसके नाममें अपना नाम यदि मैं सम्मिलित न करूं तो यह एक अन्याय होगा। लीगमें सम्मिलित होनेसे पहले मैंने उन लोगोंकी सम्मति जाननेका भी प्रयत्न किया जो इस प्रान्तके बाहर रहनेवाले हैं और जिनके साथ उतने निकट सम्बन्धका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है जितना कि बम्बई प्रान्तके सह-कार्यकर्त्ताओंके साथ। जिन उद्योगोंकी बात मैंने ऊपर कही है वे ये हैं—[illegible] (हि[illegible] [illegible]ान खिलाफतका [illegible] और भाषाभेदके [illegible]। यदि लीगके सदस्योंको समझाकर उन्हें मैं अपनी रायपर ले आ सका तो मैं इन उद्योगोंमें इसका उपयोग करूंगा जिसमें देशका विशेष ध्यान और समय इन्हीं कामोंमें लगे।

मैं यह बात खुले दिलसे स्वीकार करता हूं कि यहूदि जीनो-

द्वारके मेरे इस कार्यक्रममें रिफार्मका स्थान प्रधान नहीं है। कारण, मैं यह समझता हूं कि जो उद्योग मैंने उठाये हैं, यदि समस्त राष्ट्रकी शक्ति उनमें लग जाय तो उनसे वे सब सुधार हो जायंगे जिनकी इच्छा कट्टरसे कट्टर एक्स्ट्रिमिस्टको हो सकती है और यथासंभव शीघ्र पूर्ण स्वराज्य पानेकी जो बात है वह मुझे भी स्वीकार हैं और उस ओर बहुत जल्द आगे बढ़नेकी इच्छा मुझे भी किसीसे कम नहीं है और इसीलिये मैंने उक्त उद्योगोंको राष्ट्रीय कार्यक्रममें अग्रस्थान दिया है क्योंकि मैं यह समझता हूं कि इन्हीं उद्योगोंसे स्वराज्यका मार्ग शीघ्र तय किया जा सकेगा। मैं आल-इण्डिया होमरूल लीगको किसी तरहसे भी दल विशेषकी संस्था न होने दूंगा। मैं किसी दलका नहीं हूं और आगे भी किसी दलमें मिलना मैं नहीं चाहता। मुझे यह मालूम है कि लीगकी संघटनाके अनुसार, लीगको कांग्रेसकी सहायता करनी होगी पर कांग्रेसको मैं किसी दलकी संस्था नहीं समझता; जैसी ब्रिटिश पार्लमेंट है जिसमें कभी किसी दलका प्राधान्य होता है और कभी किसी दलका, वैसी ही कांग्रेस है। इस प्रकार कांग्रेस दल विशेषकी संस्था नहीं है। मुझे यह आशा है कि सब दल कांग्रेसको राष्ट्रीय समझेंगे और यह समझेंगे कि यह सबका एक ऐसा स्थान है जहांसे राष्ट्रकी नीति निर्द्धारित करनेके विचारसे सब दल राष्ट्रसे अपील कर सकते हैं। और मैं लीगकी नीति ऐसी बनानेका प्रयत्न करूंगा कि जिसमें कांग्रेस अपनी पक्षभेदरहित नीति बनाये रहे।

मेरे उपाय क्या होंगे? मेरा यह विश्वास है कि देशके राजनीतिक जीवनमें निर्विकल्प सत्य और सचाई लायी जा सकती है। मैं इस बातकी आशा न रखूंगा कि लोग मेरे निष्क्रिय प्रतिरोधके कार्यमें मेरा साथ देंगे। पर मैं इस काममें अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा कि हमारे प्रत्येक राष्ट्रीय उद्योगमें सत्य और अहिंसाकी प्रतिष्ठा हो। तब हम सरकार और उसके कानूनोंसे डरना या उनपर सन्देह करना छोड़ देंगे। इस विषयका विस्तार न कर मैं यही कह देना चाहता हूं कि मेरे इस कथनसे अवश्य ही कई प्रश्न उत्पन्न होंगे और समय ही उन्हें हल करेगा।